उत्पत्ति और निर्गमन

पुस्तिका 1

वेद पाठशाला
67, बराक्का रोड, किलपाक,
चेन्नै - 600 010.

Genesis and Exodus
Booklet - 1
Hindi

© IBL
2003

Cover Credit : Cynthia Kingston
Printed by :

For additional booklets write to :

India Bible Literature,
67, Beracah Road, Kilpauk,
Chennai - 600 010.

Ph : 26425166 Fax : 26428298
E-mail : ibl.maa@iblchennai.org

Genesis and Exodus
Booklet - 1
Hindi

India Bible Literature
67, Beracah Road, Kilpauk
Chennai - 600 010.

(For private circulation only)

ICM / Hindi - 1 / 2003

उत्पत्ति और निर्गमन

दस आज्ञाएँ

भूमिका

इस वेद पाठशाला में आप का स्वागत। तीस पुस्तकों की इस श्रृंखला में हम एक साथ बाइबल का अध्ययन करेंगे। इस ज्ञान की यात्रा हमें उत्पत्ति से प्रकाशितवाक्य तक ले जाएगी। हम बाइबल की हर पुस्तक के संपूर्ण चित्र का दर्शन करेंगे, उस की रूपरेखा का अंकन करेंगे; परन्तु इन से भी अधिक प्रधान बात यह है कि सीखी हुई बातों का प्रयोग करने के मार्गों का सूक्ष्म निरीक्षण करना।

बाइबल मन को असमंजस में डालने वाली पुस्तक है। उस की घटनाओं के काल, उस के पात्रों का आपसी संबंध, उस का अर्थ आदि को समझना कठिन होता है। परन्तु बाइबल का हर वाक्य, उस पहेली का हर छोटा टुकड़ा एक महान संपूर्ण इकाई का अंश है। मेरी यह प्रार्थना है कि हमारी एक साथ की इस यात्रा के अंत में आप बाइबल के पूरे संयोजन के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त करेंगे। बाइबल की सब पुस्तकों के अध्ययन के बाद आप उस की हर पुस्तक का एक एक चित्र ग्रहण करेंगे, जिन्हें आप परमेश्वर और मनुष्य के इतिहास के संदर्भ में ठीक स्थान पर रख सकेंगे। आप देखेंगे कि पुराने नियम के ज़माने में परमेश्वर ने कैसे काम किया और आप यह भी समझेंगे कि यीशु मसीह के आगमन से क्या परिवर्तन हुआ और क्यों हुआ। आप ने जिन बातों का विश्वास अपने हृदय से किया, अब वे बातें आप के मन में स्थिर होंगी; आप दूसरों से अपने विश्वास को प्रकट करने में एक नये आत्मविश्वास और नयी सामर्थ का अनुभव करेंगे।

मैं विश्वास करता हूँ कि आप इस संपूर्ण अध्ययन में हमारे साथ रहेंगे और विश्व की इस सब से प्रधान पुस्तक, बाइबल, का ज्ञान पाते हुए दूसरों को भी उस के अध्ययन

में शामिल होने को बुलाएँगे। इसलिए यात्रा के लिए तैयार रहिए, क्योंकि हम अभी यात्रा शुरू करने जा रहे हैं।

हमारे काम के साधन

प्रेरित पौलुस हम से कहता है कि बाइबल के विषय के अध्ययन में हम ऐसा "काम करनेवाला" ठहरने का प्रयत्न करें, ताकि हम लज्जित न होने पाएँ। बाइबल को समझने का एक ही मार्ग सत्य के वचन को काम में लाना है। बाइबल के अध्ययन के आरंभ में ही मैं आप को यह चुनौती देता हूँ कि आप तन-मन लगाकर बाइबल के अध्ययन के लिए अपने को समर्पित करें। अध्ययन में आप के पूरे समर्पण, ध्यान और स्थिर प्रयत्न के योग्य पुस्तक यही बाइबल है। इन सर्वेक्षण-पुस्तकों के अलावा अगर आप बाइबल का गहरा अध्ययन करने को दूसरे साधन भी पाना चाहते हैं तो आप अवश्य पाइए।

परिश्रम और मनोयोग के अलावा, आप को इस अध्ययन में सहायक कुछ साधन और भी हैं। सब से पहला है, एक बाइबल, अगर मिले तो उस के एक से अधिक अनुवाद। फिर एक कापी और कलम की भी ज़रूरत पड़ेगी।

सही साधनों के प्रयोग से जैसे घर का कोई काम सरल और फलप्रद रीति से किया जा सकता है, वैसे बाइबल का अध्ययन भी उपलब्ध साधनों से सफलतापूर्वक किया जा सकता है। हम ने जिन सहायक साधनों का उल्लेख किया है उन्हें प्राप्त कीजिए और आप को आश्चर्यजनक फल मिलेगा।

अध्याय १

बाइबल और उस का गठन

उस का अर्थ और आरंभ

बाइबल की प्रत्येक पुस्तक का अध्ययन करने के पहले, हम बाइबल की संपूर्ण इकाई की ओर देखें। उसे क्यों "बाइबल" नाम है और यही नहीं, उसे क्यों "पवित्र बाइबल" नाम दिया जाता है?

लतीन भाषा का शब्द है "बिब्लिया" जिस का माना है "पुस्तकें"; उस शब्द से 'बाइबल' शब्द निकला है। इसलिए 'बाइबल' का अर्थ है "पुस्तकों का संकलन" - ठीक छियासठ पुस्तकें। 'पवित्र' शब्द का माना है, "जो परमेश्वर का है", या "जो परमेश्वर से उत्पन्न है"। इसलिए पवित्र बाइबल का अर्थ है, "परमेश्वर संबंधी और परमेश्वर से निकलनेवाली पवित्र छोटी पुस्तकों का संग्रह"।

बाइबल को 'परमेश्वर का वचन' भी कहा जाता है। क्यों? प्रेरितों पतरस और पौलुस ने इस अर्थ में उस की व्याख्या की है। II तीमुथियुस ३:१६-१७ एक अच्छा उदाहरण है: "हर एक पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, समझाने, सुधारने और धर्म की शिक्षा के लिए लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने और हर एक भले काम के लिए तत्पर हो जाए।"

हमें बार बार बताया गया है कि बाइबल परमेश्वर के बारे में मनुष्य की रचनाओं का संकलन नहीं है। इस के विरुद्ध, वह परमेश्वर का ही वचन है, जो मनुष्य के द्वारा

लिखा गया है। शायद चालीस से अधिक व्यक्तियों ने उस की रचना की होगी, वह भी १५०० से १६०० सालों में। परमेश्वर ने कई लोगों के द्वारा ये पुस्तकें लिखने की जिस प्रक्रिया का उपयोग किया, उसे प्रेरणा कहते हैं, जिस का अर्थ है "सांस लेना"। पतरस ने उस का वर्णन ऐसा किया है:

"कोई भी भविष्यद्वाणी मनुष्य की इच्छा से कभी नहीं हुई, पर भक्त जन पवित्र आत्मा के द्वारा उभारे जाकर परमेश्वर की ओर से बोलते थे" (२ पतरस १:२१)।

यहाँ प्रयुक्त यूनानी शब्द "फेरो" का अर्थ है "ले लिया जाना" आप अपनी कल्पना एक नाव में बैठते हुए कीजिए, जो उस के पालों पर हवा के बहने से और धारा के प्रवाह के अनुसार आगे ली जाती है।

उस का गठन

अब उस के गठन के बारे में विचार किया जाएगा। आप की प्रतीक्षा के विरुद्ध, इन पुस्तकों के संग्रह का क्रम काल के अनुसार नहीं है, रचयिताओं के समय के अनुसार भी नहीं है। उन का चयन पुस्तकों के वर्ग और विषय के अनुसार किया गया है। पुस्तकों के दो मुख्य भाग हैं पुराना नियम और नया नियम। पहले ऐसा नहीं था। उस का स्पष्ट कारण यह था कि यीशु मसीह के काल में ये दो भाग नहीं थे, क्योंकि नया नियम तब नहीं लिखा गया था। इसलिए यीशु के ज़माने में जो पुस्तकें थीं, उन्हें "परमेश्वर का वचन" या "पवित्र वचन" कहा जाता था। नए नियम की पुस्तकों की रचना करने और उन पुस्तकों का संकलन करने के बाद ही पुराने और नए नियम का वर्गीकरण हुआ।

पुराने नियम की पुस्तकों का मुख्य सन्देश यह था कि यीशु आनेवाला है। पवित्र वचन के अनुसार, आदि में परमेश्वर और मनुष्य में आपस में मेल था। परमेश्वर ने मनुष्य को स्वयं निर्णय करने और चुनने की आज़ादी दी और मनुष्य ने परमेश्वर से मुँह मोड़ने का मार्ग चुना। परमेश्वर विद्रोह (पाप) को सहन नहीं कर सकता, इसलिए परमेश्वर ने मनुष्य से मुँह मोड़ा। इस तरह परमेश्वर और मनुष्य के बीच अलगाव हुआ। परमेश्वर और मनुष्य के बीच की यह पृथकता बुनियादी समस्या बनी, जिस की चर्चा 'पवित्र वचन' में की गयी है।

पुराने नियम में परमेश्वर हम से कहता है कि "अगर मैं आप से कहूँ कि इस अलगाव की समस्या को सुलझाने के लिए मैं कुछ करने जा रहा हूँ तो क्या आप मेरा विश्वास करेंगे?" इसलिए पुराने नियम की पुस्तकें कहती हैं कि यीशु आनेवाला है और वह परमेश्वर एवं मनुष्य के बीच की पृथकता को मिटा देगा और दोनों में मेल कराएगा। नया नियम हमें यह सुसमाचार सुनाता है कि यीशु आया है और जब यीशु आया, तब उस ने परमेश्वर और मनुष्य के बीच का अंतर मिटाया। पुराने और नए नियम के इस वर्गीकरण के अलावा, हर नियम की पुस्तकों के भी कुछ प्रकार हैं। पुराने नियम की पुस्तकों को पाँच अलग वर्गों में बांटा जा सकता है।

पहला, व्यवस्था की पाँच पुस्तकें। इन पुस्तकों में परमेश्वर सही और गलत आचरण का ज़िक्र करता है और हमें धार्मिकता का अपना मानदंड देता है।

दूसरा है इतिहास की दस पुस्तकें। इन में इस का विवरण है कि परमेश्वर के लोगों ने कभी कभी व्यवस्था मानी और कभी कभी नहीं मानी। उन की कहानियाँ हमें दृष्टांत प्रस्तुत कर देती हैं और हमें सावधान करती हैं। बाइबल में जितने इतिहास का विवरण दिया गया है उन से संबंधित एक मुख्य वाक्य नए नियम में मिलता है। पौलुस ने कहा है कि बाइबल के लोगों के जीवन में जो कुछ हुआ, वे हमारे लिए दृष्टांत और चेतावनियाँ हैं। जब उन्हों ने परमेश्वर की आज्ञा मानी, तब वे हमारे लिए दृष्टांत या आदर्श बने। जब उन्हों ने मनमानी की, तब वे हमारे लिए चेतावनियाँ बनीं।

इतिहास की पुस्तकों के बाद कविता की पुस्तकें आती हैं। इन में परमेश्वर उन लोगों से, जो इस संसार में उस के वचन के अनुसार जीना चाहते हैं, बहुत हृदयस्पर्शी बातें कहता है। उदाहरण के लिए अय्यूब की पुस्तक दुख के समय परमेश्वर के लोगों के दिलों को समझाती है। भजन-संहिता आराधना के समय परमेश्वर के लोगों को संबोधित करती है। नीतिवचन की पुस्तक लोगों के दूसरों से व्यवहार करने के क्षेत्र में ज़रूरी ज्ञान के तत्त्वों का उपदेश देती है। श्रेष्ठगीत की पुस्तक प्रेम की बातों से संबंधित है। इन में प्रत्येक पुस्तक विश्वासियों के लिए व्यावहारिक मदद और प्रोत्साहन देती है।

पुराने नियम का अगला भाग सब से अधिक विशाल है। उसे भविष्यद्वाचकों की पुस्तकें कहा जाता है। इस भाग के दो विभाग हैं: मुख्य (बड़े) भविष्यद्वाचक और

गौण (छोटे) भविष्यद्वाचक। यह विभाजन उन के सन्देशों के प्राधान्य पर आधारित नहीं है, परन्तु उन की भविष्यद्वाणी की दीर्घता पर निर्भर है।

नए नियम में भी पाँच प्रकार की पुस्तकें हैं। पहले, यीशु की चार जीवनियाँ हैं, (जिन्हें सुसमाचार भी कहते हैं), इन के लेखक हैं मत्ती, मरकुस, लूका और यूहन्ना। इन के बाद इतिहास की एक पुस्तक है - प्रेरितों के कामों का वर्णन। फिर पत्रियाँ हैं। उन के दो वर्ग हैं: पौलुस की पत्रियाँ और सामान्य पत्रियाँ। यीशु मसीह के पुनरुत्थान के बाद जो छोटी कलीसियाएँ स्थापित हुईं, उन के नाम प्रेरित पौलुस से लिखी हुई पत्रियाँ नए नियम के आधे भाग में मिलती हैं। दूसरी पत्रियाँ कई भिन्न लेखकों के द्वारा हैं। अंत में भविष्यद्वाणी की एक पुस्तक है - प्रकाशितवाक्य

बाइबल का अध्ययन करते समय पुराने नियम का मुख्य सन्देश : यीशु आनेवाला है, समझकर पढ़ना शुरू कीजिए। नया नियम पढ़ते समय इस सन्देश को पाइए कि यीशु आया; क्योंकि उस का प्रधान विषय यही है।

अध्याय २

बाइबल, उस का उद्देश्य, उसका लेखक, उस का आरंभ

उस का उद्देश्य

उत्पत्ति से लेकर प्रकाशितवाक्य तक बाइबल यीशु मसीह से संबंधित है। बाइबल सभ्यता का इतिहास नहीं है; सृष्टि के विषय में एक वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तक भी नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं कि बाइबल मुख्यतः श्रेष्ठ नैतिक जीवन के आदर्शों का ग्रंथ है। कुछ लोगों का विचार है कि यीशु उस में एक शिक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उस के जीवन का ढंग हमारे लिए आदर्श है। यीशु मसीह बाइबल का केन्द्रीय विषय है। इस बात की पुष्टि के लिए हम कह सकते हैं कि यद्यपि बाइबल के चार मुख्य उद्देश्य हैं, तो भी उन में सब से पहला है: यीशु मसीह को इस संसार के उद्धारकर्ता और छुटकारा देनेवाले के रूप में प्रस्तुत करना। अब इस पहले उद्देश्य को समझने को हमें यह जानना है कि क्यों हमें एक उद्धारकर्ता की आवश्यकता है। इसलिए बाइबल का दूसरा उद्देश्य है, उस ऐतिहासिक संदर्भ को प्रस्तुत करना, जिस में यीशु का आगमन हुआ।

उत्पत्ति के बारहवें अध्याय में कथा की गति धीमी पड़ती है। इस अध्याय से लेकर प्रकाशितवाक्य तक - जिन के शेष ११७८ अध्यायों में - विषय संकुचित बनता है, क्योंकि इधर से कथा इब्राहीम और उस के वंशजों पर केन्द्रित रहती है, विशेषकर उस

एक वंशज पर, जिस के कारण भूमि की सब जातियाँ अनुगृहीत हुईं - वह है यीशु मसीह।

जब हम इन दो प्रथम उद्देश्यों को समझते हैं, तो अगले दो स्पष्ट हो जाते हैं। तीसरा उद्देश्य अविश्वासी को मसीही विश्वास में लाना है और चौथा उद्देश्य विश्वासी को यह दिखाना है कि परमेश्वर विश्वासी से किस प्रकार जीने की प्रतीक्षा करता है।

उस का लेखक

बाइबल की पुस्तकों का लेखक कौन है? वे पुस्तकें कब और कहाँ रची गईं? किस भाषा में या किन भाषाओं में? क्या मूल प्रतियाँ अब भी मिलती हैं? किस ने निर्णय किया कि बाइबल के अन्दर किन पुस्तकों को स्थान देना है? किस ने आज के रूप में उस का गठन किया? जब से आप बाइबल का अध्ययन शुरू करेंगे तब से आप के मन में ऐसे प्रश्न उठते रहेंगे।

हम पहले बाइबल के लेखक पर विचार करेंगे। हम ने पहले ही कहा कि परमेश्वर ने मनुष्यों की कलम से उसे लिखा। (हम इन मनुष्यों का ज़िक्र बाद में करेंगे।) जब हम कहते हैं कि परमेश्वर ने बाइबल की पुस्तकों का लेखन किया, तब हमें दो शब्दों का आशय समझना चाहिए। पहला शब्द है प्रकाशन। प्रकाशन एक सामान्य शब्द है, जिस के अन्दर मनुष्य को सच्चाई का प्रकाशन कराने के लिए परमेश्वर के द्वारा उपयुक्त सब मार्ग आते हैं, जैसे प्रकृति के द्वारा, पवित्र आत्मा के द्वारा, भविष्यद्वक्ताओं के द्वारा और अन्य मार्गों से। दूसरा शब्द है प्रेरणा। इसे अध्यात्म शास्त्री "विशेष प्रकाशन" कहते हैं। बाइबल परमेश्वर का विशेष प्रकाशन है। उस का एक आरंभ है और अंत है। १६०० वर्षों की अवधि के अन्दर परमेश्वर ने इन पुस्तकों की रचना करने की प्रेरणा लोगों को दी। जब प्रकाशितवाक्य के अंतिम शब्द लिखे गए तब विशेष प्रकाशन पूरा हुआ। वह विशेष प्रकशन (अथवा प्रेरणा) बाद में नहीं हुआ।

इस बात को स्थापित करने के बाद कि परमेश्वर ने बाइबल की पुस्तकें रचीं, हमें यह भी कहना है कि लोगों ने ये पुस्तकें लिखीं। ये लोग थे राजा, मछुए, चरवाहे, सेनापति, याजक और अंजीर के फल चुननेवाला। एक वैद्य था। एक चुंगी लेनेवाला था। इस तरह वे विविध प्रकार के मनुष्य थे।

उस का आरंभ

किस ने निर्णय किया कि बाइबल में किन रचनाओं को निहित करना है? इस का निर्णय कब किया गया? किस प्रकार ये निर्णय किये गए?

१०० ईसवीं में जाम्निया की सभा में पुराना नियम आधिकारिक रीति से संग्रहित किया गया; परन्तु उस के तीन-चार सौ वर्षों के पहले ही वह उपयोग में था। पुस्तकों के लेखकों की विश्वासयोग्यता और भविष्यद्वाचक या शास्त्री के रूप में उन की प्रसिद्धि के आधार पर पुस्तकें बाइबल में मिलायी जाती थीं। इन में बहुत-सी पुस्तकें इब्रानी भाषा में लिखी गई थीं।

नए नियम की पुस्तकें अधिकांश यूनानी भाषा में लिखी गई थीं। उन्हें ६९२ ई. में ट्रल्लन की सभा में चुना गया और संग्रहित किया गया। इन पुस्तकों को चुनने के मानदण्ड को 'नियमानुसार मानना' कहते हैं; उस के अन्दर तीन प्रकार के सिद्धांत हैं।

१. क्या यह पुस्तक एक प्रेरित के द्वारा या एक प्रेरित के निकट साथी से लिखी गई?

२. क्या पुस्तक में विश्वासी को अनुग्रह देने योग्य आत्मिक और भक्तिपूर्वक विषय है?

३. क्या इस पुस्तक का विषय अन्य प्रेरणा-प्राप्त पुस्तकों के विषय से मिलता-जुलता है? और क्या इस पुस्तक की प्रेरणा के विषय में सब कलीसियाओं के बीच एकमत है?

बहुत पुरातन काल में लिखी ये पुस्तकें आज भी हमें कैसे उपलब्ध हैं? उन्हें बहुत ध्यान से सुरक्षित किया गया है। हमारे पास अब मूल पाण्डुलिपियाँ नहीं हैं। कागज़ इतने लंबे काल तक नहीं रहता। तो भी हमारे पास कई अच्छी प्रतिलिपियाँ हैं। इन का अनुवाद हमारी आधुनिक भाषाओं में करने में भी बहुत सावधानी की जाती थी।

उपसंहार में

हम वास्तव में कैसे जानते हैं कि बाइबल परमेश्वर का प्रेरणायुक्त वचन है? हम कैसे निश्चित रूप से जानते हैं कि सही पुस्तकें चुनी गई हैं और लिखने में एवं अनुवाद करने में कोई गल्ती नहीं हुई है? इसे जानने का एक ही मार्ग है और यीशु हमें उसे

बता देता है। उस का कहना है कि "यदि कोई उस की इच्छा पर चलना चाहे, तो वह उस उपदेश के विषय में जान जाएगा।" वह जानकारी आप के मन में पायी जाती है। बाइबल की बातों पर अमल करने की इच्छा से अगर आप बाइबल (परमेश्वर का वचन) सीखें, तब वह आप के जीवन में महान परिवर्तन लाता है। इसलिए आप कह सकते हैं कि "वह परमेश्वर का वचन है अवश्य। इस से बढ़कर और कोई दूसरी व्याख्या नहीं है।"

अध्याय ३

बाइबल का अध्ययन कैसे करें

बाइबल का अध्ययन करने में हमें सावधान रहना चाहिए और बुद्धिमानी का प्रयोग करना चाहिए। अध्ययन की एक प्रभावयुक्त रीति है चार-सूत्री प्रक्रिया : निरीक्षण, व्याख्या, प्रयोग और परस्पर संबंध।

निरीक्षण प्रथम आता है। जब आप बाइबल का कोई भाग पढ़ते हैं तब आप को यह पूछना है कि "वह क्या कहता है?" उस के बाद व्याख्या आती है, जिस में पूछा जाता है कि "उस का अर्थ क्या है?" उस के बाद प्रयोग है। इस में आप पूछते हैं कि "मेरे लिए उस का क्या माना है?" परस्पर संबंध में यह प्रश्न पूछा जाता है कि "यह भाग कैसे बाइबल की दूसरी पुस्तकों से संबंध रखता है?"

पवित्र वचन क्या कहता है और उस का अर्थ क्या है, यह समझना बहुत प्राधान्य रखता है। परन्तु अगर आप उन पर अमल नहीं करते, तो अध्ययन बेकार होता है। जब आप "प्रयोग" के बारे में सोचते हैं, तब उस व्यापक विषय का विशेष प्रकार से विश्लेषण करके आप अपने जीवन में उस की व्यावहारिकता को समझ सकते हैं। नीचे दिये हुए इन प्रश्नों के द्वारा प्रयत्न करके देखिए:-

क्या हमें अनुसरण करने योग्य कोई दृष्टांत है?

क्या अपने लिए कुछ चेतावनियाँ हैं?

क्या हमें मानने को कुछ आज्ञाएँ हैं?

क्या हमें छोड़ने को कुछ पाप हैं?

क्या परमेश्वर या यीशु के विषय में कुछ नए सत्य हैं?

क्या मेरे अपने जीवन के बारे में कुछ नए सत्य हैं?

बाइबल सीखते समय याद करने योग्य कुछ नियम हैं। यह याद कीजिए कि चाहे एक वाक्य की एक व्याख्या ही है, तो भी उस के कई प्रयोग हो सकते हैं। आप को दृढ़ विश्वास हो सकता है कि आप के जीवन में एक अमुक वाक्य का एक प्रयोजन है; परन्तु उसी वचन का प्रयोग पवित्र आत्मा दूसरे के जीवन में भिन्न प्रकार से कर सकता है।

दूसरी बात यह है कि बाइबल पढ़ते समय उस के समूचे भागों में यीशु मसीह को देखने का प्रयत्न कीजिए, क्योंकि बाइबल मसीह से संबंधित पुस्तक है।

तीसरी बात, अगर आप ऐसा एक वाक्य पढ़ें जो क्लिष्ट' है और अर्थ समझने में कठिन है तो स्पष्ट अर्थ निकलने वाले वाक्यों के द्वारा उस की व्याख्या कीजिए। ऐसे कई वाक्य हैं, जिन के अर्थ स्पष्ट हैं, उन से मार्गदर्शन पाकर कठिन वाक्यों पर विचार कीजिए।

अगला विषय बहुत प्रधान हैः एक वाक्य के अर्थ के बारे में आप ने मन में जो विचार दृढ़ किया है, उसे मन में रखकर अध्ययन शुरू न कीजिए। आप का विचार ठीक हो सकता है, पर वह गलत भी हो सकता है। अगर आप निश्चय करें कि आप जानते हैं, तो फिर पवित्र आत्मा को आप को सिखाना मुश्किल होगा।

दूसरों को पवित्र वचन सिखाते समय आप को ख़ास बात यह याद करनी है कि दूसरों को सिखाने के पहले ख़ुद उसे मानने की तैयारी आप में होनी चाहिए। आप को समझना है कि अपने वचन के द्वारा परमेश्वर हम से बोलता है, इसलिए हमें प्रार्थनापूर्वक परमेश्वर के वचन के अध्ययन में लगना है, विशेषकर आप को प्रार्थना करनी है कि पवित्र आत्मा के द्वारा व्यक्तिगत रीति से परमेश्वर आप को बातों का प्रकाशन दे।

और एक मुख्य बात : बाइबल के किसी भी वचन के संदर्भ पर विचार करना। संदर्भ-रहित आप के कथन का भी एक अलग अर्थ निकाला जा सकता है, जो आप का उद्देश्य नहीं था। उस तरह अगर बाइबल के एक वाक्य को उस के साथ आते हुए अन्य वाक्यों से अलग किया जाय, तो उस का मनमानी अर्थ समझा जा सकता है। इसलिए संदर्भ से अलग करके एक वाक्य का अध्ययन करना उस की गलत व्याख्या करने में परिणत हो सकता है।

इस तरह परमेश्वर के वचन के अध्ययन की नींव डालने के बाद हम उस की प्रथम पुस्तक उत्पत्ति को आरंभ करेंगे। जब हम आरंभ करते हैं तब आप से मेरी प्रार्थना है कि आप परमेश्वर के वचन में प्रवेश करेंगे.... और परमेश्वर का वचन आप के अन्दर प्रवेश करेगा।

अध्याय चार

उत्पत्ति - आरंभों की पुस्तक

"उत्पत्ति" शब्द का अर्थ है आरंभ। इस पुस्तक से बाइबल का आरंभ होता है, यही नहीं, वह आरंभों की पुस्तक भी है। उस में सब से पहले संसार की सृष्टि का वर्णन है।

उत्पत्ति में परमेश्वर मनुष्य के बारे में कहता है, वह आरंभ में कैसा था और अब कैसा है। यह हमें अपने बारे में समझने में सहायक होगा। वह हमें पाप के बारे में कहता है। यह देखकर कि पाप की उत्पत्ति कैसे हुई, हम समझ सकते हैं कि वह आज हम पर कैसे प्रभाव डालता है। परमेश्वर मनुष्य के साथ अपने प्रथम संपर्क के बारे में बताता है; वह आरंभिक वार्तालाप हमें प्रकट करता है कि वह हमारे साथ भी संपर्क करता है। कैन और हाबिल के बीच के संघर्ष में हम संघर्ष के आरंभ को देख सकते हैं। इस से हम आज अपने बीच होने वाले संघर्षों को समझते हैं।

अध्याय छः से नौ तक हम संसार की प्रथम विपत्ति - जल-प्रळय - के बारे में पढ़ते हैं। इस कहानी में हम उद्धार का चित्र भी देखते हैं। नूह के विश्वास के कारण, परमेश्वर ने उसे नाश से बचाया। हम विश्वास करेंगे तो हम भी पाप के नाश से बचाए जाएँगे।

इस पुस्तक के शेष भाग में हमें कई कथाएँ मिलती हैं, जो हमें यह प्रकट करती हैं कि परमेश्वर ही सब बातों पर अधिकार करता है। इस विषय को कई बार दुहराया

गया है कि फिर हमें कुछ सन्देह नहीं हो सकता कि वही आज भी सब का शासक और अधिकारी है।

आज का आप का काम है उत्पत्ति की पुस्तक की पढ़ाई को आरंभ करना और ख़ुद से ये प्रश्न पूछनाः

पुरानी बातों के विषय में वह क्या कहता है?

उस में से आज की बातों की गति पर क्या इशारा मिलता है?

उस का प्रभाव मेरे चिन्तन और जीवन को कैसे बदलता है?

अध्याय पांच

क्या सृष्टि विश्वासयोग्य है ?

उत्पत्ति की पुस्तक ही नहीं, पूरी बाइबल सृष्टि की कथा से शुरू होती है।

उस विषय का इतना प्राधान्य होते हुए भी, केवल डेढ़ अध्यायों में ही उस का वर्णन है? आप के विचार में वह क्यों ऐसा है? जैसे हम ने पिछले अध्याय में ज़िक्र किया, इस पुस्तक की रचना उन आरंभिक बातों का वर्णन करना मात्र नहीं है, परन्तु यह भी उद्देश्य है कि उन में से आज की बातों को हम समझ सकें। परमेश्वर को व्याख्या करके समझाने की अथवा अपना समर्थन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उस का उद्देश्य सृष्टि के सिद्धांत को सच साबित करना नहीं है, परन्तु ऐसे सत्यों को प्रतिपादित करना, जो हमें परमेश्वर को और हमारे साथ उस के संबंध को समझने में सहायक होगा।

तो भी हम बाइबल के इस बहुत विवादीय और बहुचर्चित विषय की चर्चा करने के बिना आगे नहीं बढ़ सकते। सृष्टि के विषय पर दो अलग दृष्टिकोण हैं। पहला यह है कि उत्पत्ति में सृष्टि का वर्णन वैज्ञानिक रीति से विश्वासयोग्य नहीं है, इसलिए बाइबल परमेश्वर का प्रेरणायुक्त वचन नहीं है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि प्रश्न "क्या बाइबल वैज्ञानिक रीति से विश्वासयोग्य है?" नहीं है, परन्तु यह है कि "क्या बाइबल के अनुसार विज्ञान विश्वासयोग्य है?" जिन लोगों का यह दृष्टिकोण है, वे कहते हैं यहाँ "बाइबल की परीक्षा नहीं होती, परन्तु विज्ञान की परीक्षा होती है।"

सचमुच विचारणीय विषय यह है कि क्या संसार की सृष्टि के विषय में बाइबल और विज्ञान एक दूसरे के अनुकूल होते हैं या उन दोनों में मेल है?

हमें कुछ बातों पर सही दृष्टिकोण रखना चाहिए। पहले, विज्ञान का स्वरूप ही ऐसा है कि वह परमेश्वर में विश्वास के लिए जगह नहीं देता। इस का माना यह नहीं है कि एक वैज्ञानिक परमेश्वर का भक्त नहीं हो सकता। परन्तु विज्ञान उन दृश्यमान वस्तुओं का अध्ययन है जिन से अन्य बातों का अनुमान किया जा सके, जिन का निरीक्षण किया जा सके, वस्तुवादी दृष्टि से जिन का मूल्यांकन किया जाय और जिन को साबित किया जाय। वह परीक्षणों, प्रयोगों और उन से निकलनेवाले निर्णयों पर आधारित है। उस का नियंत्रण किया जाता है और किया जा सकता है। परमेश्वर का स्वभाव ऐसा नहीं जो इस प्रकार के अध्ययन के अनुकूल होता है। वैज्ञानिक रीति से परमेश्वर को समझना असंभव बात है। परमेश्वर के पास आने का एकमात्र मार्ग विश्वास का मार्ग है। जैसे इब्रानियों ११:६ में बताया गया है, "विश्वास के बिना उसे प्रसन्न करना अनहोना है, क्योंकि परमेश्वर के पास आनेवाले को विश्वास करना चाहिए कि वह है और अपने खोजनेवालों को प्रतिफल देता है।"

हम पढ़ते हैं कि, "आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की" (उत्पत्ति १:१)। उस के बाद हम पढ़ते हैं कि, "पृथ्वी बेड़ौल और सुनसान पड़ी थी; और गहरे जल के ऊपर अँधियारा था; तथा परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर मंडराता था" (२)।

बाइबल कहती है कि परमेश्वर का आत्मा इस सृष्टि के ऊपर मंडराता रहा, उस की उन्नति की, उस में काम करके उसे परिवर्तित किया। उदा. के लिए उत्पत्ति १:९ में हम पढ़ते हैं कि, फिर परमेश्वर ने कहा, *"आकाश के नीचे का जल एक स्थान में इकट्ठा हो जाए और सूखी भूमि दिखाई दे; और वैसा ही हो गया।"*

परमेश्वर ने यह नहीं कहा कि, "सूखी भूमि बन जाय।" सूखी भूमि की सृष्टि उस समय नहीं की गई। सृष्टि के आरंभ में सूखी भूमि की सृष्टि हुई थी, परन्तु वह पानी के नीचे थी। इस वाक्य में प्रकट है कि वह बाहर लायी गई। यह एक मज़ेदार बात है कि वैज्ञानिकों का समूह इस बात पर सहमत है कि एक ज़माने में यह सारी पृथ्वी जल के नीचे थी।

"बारा" या "सृष्टि करना" शब्द का अर्थ है शून्य में से कुछ बनाना। बाइबल में सृष्टि के विवरण में इस शब्द का प्रयोग तीन बार ही किया गया है। पहले वाक्य में "आदि में परमेश्वर ने.... सृष्टि की।" परमेश्वर ने "सृष्टि की।" परमेश्वर ने "सृष्टि

करने" का जो यह पहला कार्य किया, उस में सारा विश्व, पृथ्वी और सब पेड़-पौधे आते हैं। वाक्य २ और २० के बीच जो शब्द प्रयुक्त हैं, वे अलग हैं। वे शब्द परिवर्तित करने को, माने, जो वस्तु पहले थी उसे लेकर उस का रूप बदलने को सूचित करते हैं। सृष्टि करने का दूसरा कार्य जल में होता है। वाक्य २१ में हम पढ़ते हैं, *"परमेश्वर ने जाति जाति के बड़े जल-जन्तुओं की भी सृष्टि की, जो चलते फिरते हैं, जिन से जल बहुत ही भर गया और एक एक जाति के उड़नेवाले पक्षियों की भी सृष्टि की; और परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है" (२१।*

यहाँ भी बाइबल के इस विवरण और विज्ञान के बीच सहमति है। वैज्ञानिक मानते हैं कि जीवन जल में प्रारंभ हुआ और बाइबल का विवरण भी यही कहता है।

सृष्टि का तीसरा कार्य वाक्य २७ में दिया गया है: *"तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया, अपने ही स्वरूप के अनुसार परमेश्वर ने उस को उत्पन्न किया, नर और नारी करके उस ने मनुष्यों की सृष्टि की"*

उत्पत्ति पुस्तक में दिया हुआ सृष्टि का वर्णन विश्व की हर वस्तु के आरंभ का वर्णन करता है। सृष्टि करने के मूल कार्यों के बाद, परमेश्वर का आत्मा इस मूल सृष्टि में परिवर्तन और उन्नति लाता है। यह बात जीवन के विविध स्वरूपों के विकसित होते जाने के बारे में वैज्ञानिकों का जो निरीक्षण है, उस से समानता रखती है। यहाँ मैं विकासवादी सिद्धांत से समानता देखता हूँ।

अध्याय ६

मनुष्यजाति का जन्म

हम ने विश्व के आरंभ के बारे में बताया; अब हम स्वयं के बारे में सोचें। मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में उत्पत्ति की पुस्तक में जो बताया गया है, उस पर हम विचार करेंगे। इस पुस्तक का उद्देश्य यह था कि सृष्टि जैसी थी उस का वर्णन करना, ताकि हम समझें कि वह कैसी है। जब हम मनुष्य-जाति के आरंभ के विषय पर आते हैं, तब हम अपने विषय पर ही सोचते हैं। उत्पत्ति की पुस्तक में मनुष्य की सृष्टि करने में परमेश्वर का उद्देश्य क्या बताया गया है? हम पुरुष और स्त्री की सृष्टि के वर्णन से पढ़ना शुरू करेंगे।

"फिर परमेश्वर ने कहा, हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाएँ; और वे समुद्र की मछलियों और आकाश के पक्षियों पर.... अधिकार रखें। तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया, अपने ही स्वरूप के अनुसार परमेश्वर ने उस को उत्पन्न किया, नर और नारी करके उस ने मनुष्यों की सृष्टि की। और परमेश्वर ने उन को आशीष दी और उन से कहा, फूलो-फलो और पृथ्वी में भर जाओ।.... फिर यहोवा परमेश्वर ने कहा, आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं, मैं उस के लिए एक ऐसा सहायक बनाऊँगा जो उस से मेल खाए।.... तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को भारी नींद में डाल दिया और जब वह सो गया तब उस ने उस की एक पसुली निकालकर उस की जगह मांस भर दिया। और यहोवा परमेश्वर ने उस पसुली को जो उस ने आदम में से निकाली थी, स्त्री बना दिया और उस को आदम

के पास ले आया। ...इस कारण पुरुष अपने माता पिता को छोड़कर अपनी पत्नी से मिले रहेगा और वे एक ही तन बने रहेंगे।" (उत्पत्ति १:२६-२८; २:१८, २१-२४)।

परमेश्वर के स्वरूप में

इस भाग में प्रधान बात यह प्रकट होती है कि मनुष्य की सृष्टि परमेश्वर के स्वरूप और समानता में की गई। ये शब्द हमें परिचित हैं, परन्तु उन का अर्थ क्या है? परमेश्वर आत्मा है, उस के एक शरीर नहीं है; इसलिए यह मनुष्य के शारीरिक रूप का वर्णन नहीं हो सकता। हमारी आत्मिक होने की योग्यता की ओर यहाँ संकेत है। उस अर्थ में ही हम परमेश्वर के समान हैं। उत्पत्ति के तीसरे अध्याय में हम देखते हैं कि, परमेश्वर से समानता का यह गुण आदम और हव्वा के पाप से विकृत होता है। उस बात से लेकर बाइबल जिस मुख्य समस्या का ज़िक्र करती है, वह मनुष्य में परमेश्वर के स्वरूप को फिर "नया बनाने" के विषय की है। उत्पत्ति के प्रथम दो अध्यायों में मनुष्य का वह स्वरूप उपस्थित किया गया है, जिस में उस की सृष्टि की गयी और जो परमेश्वर के उद्देश्य के अनुसार था। उत्पत्ति अध्याय ३ मनुष्य को ऐसा प्रकट करता है, जैसा वह है।

नर और नारी

मनुष्य की सृष्टि के विषय में हमें समझने की यह बात है कि परमेश्वर ने नर और नारी करके उन की सृष्टि की। "अनस्तीसिया" देकर चीर-फाड करने का यह पहला उदाहरण है। परमेश्वर प्रथम "अनस्तीसिया" करने वाला था। उस ने आदम को गहरी नींद में डाला, फिर उस की एक पसली ली और उस से नारी की सृष्टि की। यहाँ हमें सुन्दर प्रतीक मिलता है। परमेश्वर ने नारी को पुरुष के सिर से कुछ लेकर नहीं बनाया, जिस से नारी पुरुष पर अधिकार करे; उस ने नारी को पुरुष के पैर से भी नहीं लिया, ताकि वह पुरुष की सेवा करे। उस ने नारी को पुरुष की पसली से बनाया, जिस से वह पुरुष के हृदय के पास हो।

परमेश्वर ने नारी को क्यों बनाया? "अकेला" शब्द के इब्रानी शब्द का अनुवाद "अधूरा" अर्थ में किया जा सकता है। "सहायक" शब्द को "पूरा करने वाला" के अर्थ में समझा जा सकता है। इब्रानी भाषा के व्याकरण-ग्रंथ को देखें तो मालूम होता है कि

जब परमेश्वर इस नर और नारी को एक साथ लाता है, जिसे हम आज "पवित्र विवाह-बन्धन" कह सकते हैं, तब वे दोनों मिलकर एक ही तन के बनते हैं, तब एक संपूर्ण मनुष्य होता है।

यह भी देखने योग्य है कि जब परमेश्वर नर और नारी को साथ लाया, तब उस ने इस भूमि में आज की सब से महत्त्वपूर्ण संस्था का आरंभ किया। हम उसे कुटुंब या गृह कह सकते हैं। परमेश्वर की यह योजना थी कि उस ने नर और नारी की सृष्टि करके उन्हें एक दूसरे के सहभागी बनाया, ताकि वे माँ-बाप बन सकें। फिर ये माँ-बाप बच्चों को पैदा करेंगे, जो बाद में पुरुष-नारी होकर एक दूसरे के सहभागी और माँ-बाप बनेंगे जो आगे बच्चों को पैदा करेंगे। यही क्रम जीवन का सब से प्रधान नियम है, जिस ने सारे मानव-कुटुंब को जन्म, पोषण और दिशा-निर्देश दिये हैं।

परमेश्वर ने मनुष्य-जीवन का जो बुनियादी नियम रखा है, उस का बहुत प्रधान अंग है पुरुष और नारी के बीच का संबंध। परमेश्वर ने उन्हें इसी कारण से नर-नारी करके सृष्टि की। एक त्रिकोण की कल्पना कीजिए जिस के ऊपरी कोण पर परमेश्वर है, नर नीचे के बाएं कोण पर और नारी उस के सामने के कोण पर। दोनों नर-नारी एक ही परमेश्वर से संबंध में रहेंगे, तो दोनों परमेश्वर के निकट आएँगे और वे एक दूसरे के निकट भी अधिक घनिष्टता में रहेंगे।

उत्पत्ति की पुस्तक में जब आप विवाह के बारे में पढ़ते हैं, तब आप को पता लगता है कि दो अर्थों में वह बहुत घनिष्ट संबंध है। विवाह के बाद एक पुरुष अपने माँ-बाप को छोड़ता है। वह उस कुटुंब से अलग होता है, जहाँ उस ने बीस-पच्चीस वर्ष बिताए। यही नहीं, वह उस विवाह के कारण दूसरों से भी अलग होता है। वह उस पत्नी के साथ अनन्य संबंध में शेष सारा जीवन बिताएगा। उस नारी को भी अपने पति के प्रति वही पूर्ण प्रतिबद्धता होनी है। विवाह के संबंध में यही परमेश्वर की योजना है।

अध्याय ७

तू कहाँ है?

उत्पत्ति की पुस्तक का एक बहुत परिचित भाग है तीसरा परिच्छेद, जिस में आदम और हव्वा मना किया हुआ फल खाते हैं। दूसरा अध्याय हमें उस तरह के मनुष्य को दिखाता है, जिस मनुष्य की परमेश्वर ने सृष्टि की और जिस रीति से उस के जीने का उद्देश्य परमेश्वर ने रखा। पर तीसरा परिच्छेद हमें पाप के बारे में प्रकट करता है - जैसे वह पाप पहले था और आज भी है। उस में आदम और हव्वा निर्णय लेने की कठिन परिस्थिति का सामना करते हैं, जिस का हम रोज़ कई बार सामना करते हैं। वह है: क्या हम परमेश्वर के मार्ग को होने देंगे अथवा क्या हम अपने मार्ग पर चलेंगे? परमेश्वर ने हमें अपनी पसन्द को चुनने की स्वतन्त्रता दी है। इस कारण हम या तो परमेश्वर की इच्छा को पूरा कर सकते हैं या अपनी इच्छा पर चल सकते हैं।

उत्पत्ति के तीसरे अध्याय में इस संघर्ष की समस्या का प्रथम वर्णन है। इच्छाओं के बीच के संघर्ष के उस वर्णन से हम आज के जीवन में होनेवाले इस संघर्ष को समझ सकते हैं। तीसरे अध्याय के पहले ही एक भाग में परमेश्वर ने इस की पृष्ठभूमि तैयार की (अध्याय २:८-९)।

यहोवा परमेश्वर ने पूर्व की ओर अदन देश में एक वाटिका लगाई और वहाँ आदम को जिसे उस ने रचा था रख दिया। यहोवा परमेश्वर ने भूमि में सब भाँति के वृक्ष लगाए जो देखने में मनोहर थे और जिन के फल खाने में अच्छे थे। वाटिका के बीच में जीवन के वृक्ष को और भले या बुरे के ज्ञान के वृक्ष को भी उगाया।

परन्तु बाद में कहीं से लोगों की यह राय बनी कि मना किया हुआ वृक्ष सेव का वृक्ष था, पन्तु बाइबल के इन अध्यायों में कहीं भी सेवों का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु हम जीवन के वृक्ष के बारे में और भले या बुरे के ज्ञान के वृक्ष के बारे में पढ़ते हैं।

आगे बढ़ने के पहले, हमें इधर प्रयुक्त भाषा के प्रकार के बारे में कहने की ज़रूरत है। यह कहानी ऐतिहासिक है, परन्तु वह प्रतीकात्मक भी है। रूपक या प्रतीक में लोगों, स्थानों और वस्तुओं के ऐतिहासिक अर्थ के अलावा और एक आंतरिक अर्थ भी होता है; वह अकसर नैतिकता की शिक्षा देनेवाला होता है।

अदन वाटिका के वर्णन में उधर के वृक्षों के बारे में जब हम पढ़ते हैं तब हमें सूचना मिलती है कि उस स्थान में परमेश्वर मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने जा रहा था। उन की प्राथमिकता को देखिएः पहला है, देखने में मनोहर, माने मनुष्य की आँख को तृप्त करने वाले; दूसरा, मनुष्य के खाने की ज़रूरत को पूरा करने वाले; तीसरा है, जो जीवन देते हैं। परन्तु भले या बुरे के ज्ञान का वृक्ष भी था और परमेश्वर ने उस से दूर रहने को कहा।

अध्याय तीन में, जहाँ प्रथम पाप का विवरण मिलता है, आप देख सकते हैं कि प्राथमिकता का क्रम बदल गया है। आँख को पहला, भोजन को दूसरा, जीवन को तीसरा स्थान और ज्ञान को कभी स्थान नहीं, यह क्रम रखने के बदले उन्हों ने भोजन को पहला, आँख को दूसरा और ज्ञान को तीसरा स्थान दिया और उन्हें जीवन मिला ही नहीं। वे आत्मिक मृत्यु के शिकार हुए। व्यवस्थाविवरण ८:३ में हम पढ़ते हैं कि "मनुष्य केवल रोटी ही से नहीं, परन्तु जो वचन यहोवा के मुँह से निकलते हैं, उन ही से वह जीवित रहता है।" जब हम केवल बाहर जाते हैं और अपनी ज़रूरतों को पूरा करने एवं हमारे आग्रहों को तृप्त करने के मार्ग ढूँढते हैं, तब हम वास्तविक जीवन नहीं पाते। इस वाक्य के अनुसार परमेश्वर के मुँह से निकलते हुए वचन को मानने से सच्चा जीवन आता है।

जब परमेश्वर ने आदम और हव्वा को वाटिका में रखा, तब उस ने उन की सब आवश्यकताओं को पूरा करने के साधन भी दिए। उस ने उन्हें बनाया; इसलिए वह उन की ज़रूरतों को जानता था। वैसे, उस ने हमें बनाया, इसलिए वह हमारी ज़रूरतों को भी जानता है और उन्हें पूरा करने की इच्छा भी करता है।

अब आप सोच सकते हैं कि कैसे प्राथमिकता की सूची में आँख पहले आयी। बाइबल में आँख कहने का मतलब अकसर शारीरिक आँख नहीं है। उदा. के लिए मत्ती ६:२२-२३ में यीशु ने कहा "शरीर का दिया आँख है; इसलिए अगर तेरी आँख निर्मल हो, तो तेरा सारा शरीर भी उजियाला होगा। परन्तु यदि तेरी आँख बुरी हो, तो तेरा सारा शरीर भी अँधियारा होगा।" यहाँ यीशु शारीरिक दृष्टि के बारे में कह रहा था। जब परमेश्वर ने अदन वाटिका में दृष्टि को मनोहर लगने वाली वस्तुओं को प्रथम प्राथमिकता दी, तब वास्तव में उस का यह उद्देश्य था कि उन्हें उस पर दृष्टि रखनी है, ताकि वे अपनी सब से बड़ी ज़रूरतों को पूरा कर सकें। उन की प्रथम ज़रूरत और हमारी भी सब से बड़ी ज़रूरत है हमें परमेश्वर का यह मार्गदशन मिलना कि हमें वस्तुओं की ओर कैसे देखना चाहिए।

इस अध्याय में हमें एक और चित्र भी मिलता है। आदम और हव्वा ने प्रलोभन में पड़कर पाप किया, तब हम पढ़ते हैं कि यहोवा परमेश्वर जो दिन के ठंडे समय वाटिका में फिरता था, उस का शब्द उन को सुनाई दिया। तब आदम और उस की पत्नी वाटिका के वृक्षों के बीच यहोवा परमेश्वर से छिप गए। तब यहोवा परमेश्वर ने पुकारकर आदम से पूछा, तू कहाँ है? (३:८-९)।

परमेश्वर आदम और हव्वा से कुछ प्रश्न पूछके उन के साथ वार्तालाप शुरू करता है, जैसे "तू कहाँ है?" किस ने तुझ से कहा कि तू नंगा है? (उत्पत्ति ३:९-११)। परमेश्वर इन प्रश्नों के उत्तर पहले ही जानता था, क्योंकि वह सब कुछ देखने वाला है। वह सब जगह विद्यमान है। आदम और हव्वा कई बातें नहीं समझते थे; इसलिए उस ने उन से ये प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों का उद्देश्य उन्हें सोचने देना है। जब परमेश्वर ने पूछा कि "तू कहाँ है?", तब वह वास्तव में पूछ रहा था कि "तू क्यों मुझ से छिपता है?"

जब आदम ने उत्तर दिया कि वह नंगा था, इसलिए छिपा बैठा था, तब परमेश्वर का अगला प्रश्न था "किस ने तुझे बताया कि तू नंगा है?" इब्रानी भाषा में उस का यह अर्थ निकलता है कि "किस ने तुझे वह बात जानने दी?" उस का सच्चा उत्तर है कि परमेश्वर ने ही उसे वह जानने दिया; क्योंकि वही सारे ज्ञान का स्रोत है। वह चाहता है कि हम कुछ बातों की जानकारी रखें; परन्तु वह कुछ बातें हमें प्रकट कर नहीं देता। उसे सब प्रकार का ज्ञान है, वह सर्वज्ञानी है। अगर हम ज़रा सोचें तो हम जान पाते

हैं कि हम आत्मिक रीति से किस स्तर पर हैं। हम यह भी समझ सकते हैं कि हमारा स्तर क्या है और हमें कहाँ होना चाहिए यह सब परमेश्वर ही हमें जानने देता है।

फिर परमेश्वर पूछता है कि "जिस वृक्ष का फल खाने से मैंने तुझे मना किया था, क्या तू ने उस का फल खाया है?" (११b) आदम और हव्वा ने परमेश्वर की आज्ञा तोड़ी और अब वे वृक्षों के बीच छिपे बैठे थे, अंजीर के पत्तों से नंगापन ढककर अपने पाप के दुष्परिणामों को भोग रहे थे। अगर आप भी अपने बुरे कामों के फल भोग रहे हैं तो स्वयं से पूछिए कि क्या तुम ने मना किए हुए पेड़ के फल खाए? क्या तुम ने परमेश्वर के वचन की उपेक्षा की और उस की आज्ञा न मानी? अपने जीवन में उस के मार्गनिर्देश की अवहेलना की?

परमेश्वर का चौथा प्रश्नः "तू ने यह क्या किया है?" हव्वा से पूछा गया था। यद्यपि उस ने बहाना दिया, तो भी उस से "पाप मानने" की बातें भी निकलीं। "पाप मानना" कहने का मतलब है "एक ही बात कहना, मानना"। माने, तुम ने जो किया, उस के बारे में परमेश्वर के विचार से सहमत होना। परमेश्वर चाहता था कि हव्वा दिल खोलकर उसे सब कुछ बता दे, जिस से दोनों मिलकर उन बातों का निर्णय कर सकें। वह हम से भी यही चाहता है। वह चाहता है कि हम अपने अपराध मानें और ईमानदारी से उस का सामना करें।

उत्पत्ति तीसरे अध्याय में हमें यह चित्र मिलता है कि दो व्यक्तियों ने पाप किया और परमेश्वर ने उन से कैसा व्यवहार किया। परन्तु वह हमारा भी चित्र है, जो दिखाता है कि जब हम पाप करते हैं और परमेश्वर से छिपते हैं तब परमेश्वर हम से क्या व्यवहार करता है। वह पाप का और उस के दुष्परिणामों का भी चित्र है। वह इस का भी चित्र है कि परमेश्वर पापी का पीछा करता रहता है और उस के साथ संपर्क करता है।

पाठ ८

तेरा भाई कहाँ है?

बाइबल का एक मुख्य सन्देश है परमेश्वर से मेल करने की मनुष्य की आवश्यकता। जब मनुष्य पहला पाप करता है, तभी से परमेश्वर उस के साथ मेल करना संभव बनाने का प्रयत्न करता है। उत्पत्ति ३:१५ में सांप से परमेश्वर के वचनों में मसीह के बारे में पहली भविष्यद्वाणी मिलती है। *"मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में और तेरे वंश और उस के वंश के बीच में वैर उत्पन्न करूँगा, वह तेरे सिर को कुचल डालेगा और तू उस की एड़ी को डसेगा।"*

यह समझते हुए कि सर्प शैतान का प्रतीक है, हम इस वाक्य में पहला इशारा पाते हैं कि परमेश्वर इस संसार में ऐसे किसी को लाने जा रहा है, जो सब को ठीक करेगा। आदम और हव्वा के पाप करने के परिणामस्वरूप यह भविष्यद्वाणी हुई।

परन्तु इन के पाप के कई दुष्परिणाम हुए। पहला, मनुष्य परमेश्वर से अलग हुआ। फिर अध्याय ४ में हम पाप का दूसरा बुरा परिणाम देखते हैं, वह है, संघर्ष। उस काल में जो संघर्ष हुआ, उस से हम आज के संघर्ष को समझ सकते हैं। हम अपने अन्दर संघर्ष का अनुभव करते हैं; पति-पत्नी के बीच, बच्चों और माँ-बाप के बीच संघर्ष होता है। अपने काम करने के स्थानों में और राष्ट्रों के बीच भी संघर्ष हैं। संघर्ष हमारी बहुत गंभीर समस्याओं में एक है। उत्पत्ति, अध्याय ४ में हम संघर्ष के कुछ मुख्य कारणों को और उन्हें हल करने के कुछ निवारणों को देखते हैं। उत्पत्ति में हमें संघर्ष का परिचय दो भाइयों की कथा के रूप में मिलता है।

इन भाइयों के नाम हम जानते हैं - कैन और हाबिल। कथा यह है कि कैन ने परमेश्वर को कुछ भेंट देना चाहा। वह किसान था, इसलिए भूमि की उपज से कुछ ले आया। उस का भाई हाबिल एक चरवाहा था; इसलिए वह भेड़-बकरियों में से एक को भेंट में लाया। परमेश्वर ने हाबिल की भेंट को ग्रहण किया, परन्तु कैन की भेंट को ग्रहण नहीं किया।

कई लोग यह गलत विचार रखते हैं कि हाबिल की भेंट को ग्रहण किया गया, क्योंकि वह पशु-बलि थी। परन्तु यह बात बाइबल में नहीं है। हाबिल की भेंट ग्रहण की गई, क्योंकि हाबिल ग्रहण-योग्य था। कैन की भेंट ग्रहण नहीं की गयी, क्योंकि कैन ग्रहण-योग्य नहीं था (६-७)।

कैन और हाबिल की कथा में कुछ बातों की कल्पना करना आसान है, जो कथा में नहीं हैं। कैन को पशु-बलि चढ़ाने का निर्देश नहीं दिया गया है। लैव्यपुस्तक में लोगों को खेतों से अनाज या अन्य उपज की भेंट चढ़ाने का निर्देश था। इसलिए इस कथा में भेंट का प्रकार मुख्य नहीं है; भेंट चढ़ानेवालों को ही प्राधान्य है। कैन परमेश्वर को स्वीकार्य नहीं था, जब वह यह जानता है, तब वह क्रोधित होता है और उदास भी।

कैन के माँ-बाप से जैसे परमेश्वर ने प्रश्न पूछे थे, वैसे वह कैन से पूछता है: "तू क्यों क्रोधित हुआ? तेरे मुँह पर उदासी क्यों छा गई?" (६)। परमेश्वर इन सवालों के जवाब जानता ही था। परन्तु कैन का हठी मन उसे समझने से इनकार कर रहा था। "यदि तू भला करे, तो क्या तेरी भेंट ग्रहण न की जाएगी? और यदि तू भला न करे तो पाप द्वार पर छिपा रहता है और उस की लालसा तेरी ओर होगी और तू उस पर प्रभुता करेगा (तुझे प्रभुता करनी चाहिए)" (७)। परन्तु दुख की बात है कि कैन ने पाप को नियंत्रित नहीं किया। वाक्य ८ में कहा गया है कि क्रोध के पागलपन में उस ने अपने भाई को मारा।

फिर उस से सवाल पूछे जाते हैं: "तेरा भाई हाबिल कहाँ है? तू ने क्या किया है?" परन्तु कैन ने हठी होने से अपना पाप स्वीकार नहीं किया। परन्तु परमेश्वर उस से स्पष्ट कहता है कि वह सब कुछ जानता है (९-१०)।

उत्पत्ति अध्याय ३ में प्रश्न था: "तू कहाँ है?"। अब अध्याय ४ में प्रश्न है: "तेरा भाई कहाँ है?" यह प्रश्न पूछकर परमेश्वर कैन को समझाना चाहता है कि उस ने बहुत बुरा किया। उस ने एक निरपराधी को मारकर अपना क्रोध निकालना चाहा।

पर वह उसे मारने के बाद भी क्रोधित था। उसे मारने से किसी भी समस्या का हल नहीं हुआ; परन्तु समस्या बढ़ गई।

वाक्य ७ सारी कथा की कुंजी है। उस में मुख्य समस्या जो संघर्ष है, उस पर विचार है और उस का हल भी प्रस्तुत किया गया है। तू भला करे तो तू परमेश्वर को ग्रहण-योग्य होगा; यही नही तू अपने लिए भी ग्रहण-योग्य होगा। तुझे किसी को मारकर जीवन जीने की ज़रूरत नहीं होगी। यीशु ने पहाड़ पर से जो उपदेश दिया, उस में एक भाग है जो कैन और हाबिल की कथा से समानता रखता है। वह मत्ती अध्याय ७ के प्रथम पाँच वाक्यों में है। यीशु ढोंगी लोगों से पूछता है कि वे क्यों हमेशा दूसरों के दोष निकालते हैं? जब वे हमेशा दूसरों की आलोचना करने पर तुले हैं, तब वे कैसे सफल होने की आशा करते हैं? फिर यीशु यह उदाहरण देता है कि वे उन लोगों के समान हैं, जिन का काम दूसरों की आँखों से तिनका निकालना है, जब उन की अपनी आँखों में लट्ठा है।

कई लोग सोचते हैं कि इस में दूसरों पर दोष लगाने की बात कही गई है। परन्तु यीशु वही बात कहता है, जो परमेश्वर कैन से कह रहा था। "तू गलत विषयों की ओर ध्यान देता है। तू अपने भाई के बारे में चिंता करना छोड़ और अपनी ओर मन लगा।"

अच्छी बात यह हुई कि हाबिल की मृत्यु से भलाई का अंत नहीं हुआ। दो पीढ़ियों के बाद, उत्पत्ति ४:२६ में हम देखते हैं कि पहली बार मनुष्य परमेश्वर के साथ संपर्क अथवा प्रार्थना करने लगता है। इस समय तक परमेश्वर ने ही मनुष्य के साथ सारा संपर्क आरंभ किया था।

हम सब लोग संघर्ष का सामना करते हैं। कभी कभी हम उस के कारण नहीं होते; कभी कभी हम कारण होते हैं। परन्तु जब आप अपने को संघर्ष में उलझे हुए पाते हैं, अपनी भावनाओं को काबू में रखकर सच्ची समस्या का पता लगाने की कोशिश कीजिए। जैसे उत्पत्ति ४:७ का प्रस्ताव है, वैसे भला करें, परमेश्वर को ग्रहण-योग्य होवें। तो आप को हाबिल को मृत्यु का शिकार बनाकर जीवन चलाना नहीं पड़ेगा।

अध्याय ९

विश्वास के पिता

अब हम उत्पत्ति पुस्तक के सब से लंबे भाग में आ रहे हैं, जिस में तीन प्रसिद्ध पात्र हैं: इब्राहीम (अब्राम), इसहाक और यूसुफ। बाइबल में इन की जीवनी के विवरण के लिए इतने अधिक पृष्ठ लगाए गए हैं, उन से उन की महानता का पता लगता है। जिस भाग में इब्राहीम की कथा है, उस का मुख्य विषय है, विश्वास। अगले कई अध्यायों में परमेश्वर चाहता है कि हम विश्वास के बारे में सीखें, विश्वास जैसा पहले था और जैसा अब है।

इब्रानियों अध्याय ११ में, जिसे बाइबल का विश्वास-अध्याय कहा जाता है, इस विषय पर कहता है कि *"विश्वास बिना, उसे प्रसन्न करना अनहोना है, क्योंकि परमेश्वर के पास आनेवाले को विश्वास करना चाहिए कि वह है और अपने खोजनेवालों को प्रतिफल देता है" (६)।*

चूँकि विश्वास का इतना अधिक महत्त्व है और परमेश्वर चाहता है कि हम विश्वास को समझें, वह हमें इब्राहीम नामक मनुष्य की कथा सुनाता है। नए नियम में बाइबल के अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक ज़िक्र इस व्यक्ति का किया गया है, वह भी विश्वास के दृष्टांत के रूप में। विश्वास को समझने के लिए आप को इब्राहीम को समझना है।

उस का नाम

जब हम इब्राहीम को उत्पत्ति के ग्यारवें अध्याय में देखते हैं, तब उस का नाम अब्राम था, जिस का अर्थ है "कई पुत्रों का पिता।" पचहत्तर वर्ष के पुत्रहीन मनुष्य को

यह नाम व्यंग्योक्ति जैसा लगता है। तो भी परमेश्वर ने उस से कहा कि "मैं तेरे वंश को पृथ्वी की धूल के किनकों की नाईं बहुत करूँगा, यहाँ तक कि जो कोई पृथ्वी की धूल के किनकों को गिन सकेगा वही तेरा वंश भी गिन सकेगा" (१३:१६)। परमेश्वर के हर निर्देश को अब्राम ने माना, इसलिए हम सोच सकते हैं कि उस ने इस बात में भी परमेश्वर पर विश्वास किया - कम से कम कई अवसरों पर (१६)।

उस की वेदियाँ

हम अकसर सोचते हैं कि हम एक मसीही-सेवा के क्षेत्र में या एक कलीसिया या संगठन में जाने को बुलाये जाते हैं। परन्तु क्या हम परमेश्वर के पास बुलाए जाने के बारे में सोचते हैं? अगर परमेश्वर आप को कारण बताए बिना, एक सुनसान भूमि की ओर जाने का बुलावा देता है तो क्या होगा? जब इब्राहीम ७५ वर्ष की उम्र का था, तब उसे यही अनुभव हुआ (१२:१-४)। परमेश्वर ने उसे बुलाकर उस के पिता, उस के देश और बन्धु-जनों को छोड़कर एक वीरान जगह को जाने का बुलावा दिया।

जैसे परमेश्वर-विषयक हर कथा के दो पहलू होते हैं, वैसे इस कथा के भी हैं: ईश्वरीय पहलू और मानवीय पहलू। ईश्वरीय पहलू को देखने के लिए इब्राहीम को परमेश्वर के जो दर्शन हुए उन्हें देखिए। परमेश्वर आठ बार इब्राहीम को प्रत्यक्ष हुआ। उसी ने उस संपर्क का आरंभ किया, जैसे परमेश्वर के मनुष्य के साथ होनेवाले संबंध में होता है। रोमियों ३:११ में पौलुस कहता है कि कोई परमेश्वर का खोजनेवाला नहीं है। परमेश्वर ही मनुष्य की खोज करता है। अगर ऐसा लगता है कि कोई व्यक्ति परमेश्वर की खोज करता है, तो यथार्थ बात यह है कि वह उसे खोजनेवाले परमेश्वर की ओर अपना मन खुला रखता है, माने, उस की ओर अनुकूल प्रतिक्रिया दिखाता है। हमेशा परमेश्वर ही संबध का आरंभ करता है।

परमेश्वर के इब्राहीम के साथ संबंध का मानवीय पहलू यह है कि इब्राहीम ने परमेश्वर के लिए चार वेदियाँ बनायीं। मोरे के मैदान में पहली वेदी बनायी गई, जहाँ परमेश्वर ने इब्राहीम को दर्शन देकर कहा था कि "यह देश मैं तेरे वंश को दूँगा" (१२:७)। मोरे शब्द का अर्थ है "सिखाना या खोजना।" मैं इब्राहीम की उस प्रथम वेदी को "अनुकूल प्रतिक्रिया" की वेदी बुलाता हूँ, क्योंकि एक सुनसान प्रदेश में जाने को

बुलानेवाले परमेश्वर के प्रति इब्राहीम की आज्ञाकारिता की प्रतिक्रिया प्रकट करने को वह वेदी बनायी गयी।

उस की दूसरी वेदी बेतेल और ऐ के बीच बनायी गयी। इब्रानी भाषा में बेतेल का अर्थ है "परमेश्वर का घर"। तब परमेश्वर का कोई घर नहीं था, इसलिए उस का अर्थ "वह स्थान जहाँ परमेश्वर है" माना जा सकता है। ऐ का अर्थ है "नाश, कष्ट, गड्ढे"। रोमियों ६:२३ में बताया गया है कि "पाप की मज़दूरी तो मृत्यु है।" यह शहर उस सत्य का समर्थन करता है। ऐ से कुछ दूर पूर्व में सदोम और अमोरा हैं। अपनी पहली वेदी पर अब्राम कहता था"मुझे सिखा।" दूसरी वेदी के स्थान के अनुसार (बेतेल और ऐ के बीच) यह अर्थ निकलेगा कि उस ने अब तक निश्चय नहीं किया है कि परमेश्वर की शिक्षा की ओर उस की क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए।

अब्राम इस दूसरी वेदी को भी छोड़कर दक्षिण की ओर जाता है, भैगोलिक रीति से ही नहीं, आत्मिक रीति से भी। वह अपनी पत्नी से कहता है कि वह मिश्र देश के मर्दों से कहे कि वह अब्राम की बहन है, ताकि वे पुरुष उस स्त्री को ले जाने को उसे नहीं मारेंगे। वह कई क्लेशों में पड़ता है और लगता है कि वह आत्मिक रूप से "उस से बाहर था।"

इस घटना के बाद इब्राहीम दूसरी वेदी के स्थान पर लौट आता है और परमेश्वर से प्रार्थना करता है। उस सच्ची प्रार्थना के बाद इब्राहीम लूत को सुझाव देता है कि वे दोनों अलग होवें। परमेश्वर और इब्राहीम के बीच जो बातें हुईं इन का वर्णन बाइबल में नहीं है, तो भी लगता है कि परमेश्वर ने उसे समझाया कि उसे लूत को अपने साथ नहीं ले आना था। बाद में हम लूत को सदोम और अमोरा के अधर्ममय परिस्थिति में उलझते हुए पाते हैं तो हम समझते हैं कि परमेश्वर ने ऐसा क्यों कहा होगा।

लूत पूरब की ओर गया और इब्राहीम पश्चिम की ओर। उस ने हेब्रोन में तीसरी वेदी बनायी। "हेब्रोन" शब्द का अर्थ है "संसर्ग"। यह शब्द भी प्रतीकात्मक है। पहली वेदी ने "मुझे सिखा" और दूसरी वेदी ने "मुझे निश्चय नहीं", "मैं बीच में हूँ" अर्थ प्रकट किए। यह तीसरी वेदी इस अर्थ का सूचक है कि "हे परमेश्वर, मैं तुझे जानना चाहता हूँ।" मैं इस वेदी को संबंध की वेदी" नाम देता हूँ।

इब्राहीम की कथा के प्रथम दो अध्यायों १२ और १३ में, उस ने तीन वेदियाँ बनायीं। फिर अध्याय २२ तक वह कोई वेदी नहीं बनाता। तीसरी वेदी और चौथी वेदी के बीच क्या घटनाएँ हुईं?

जब इब्राहीम ने कहा, "हे परमेश्वर, मैं तुझे जानना चाहता हूँ", मेरे विचार में परमेश्वर ने यह उत्तर दिया होगा कि "मैं चाहता हूँ कि "मेरे साथ संबंध रखने को तुझे जानना है कि मैं ही सब कुछ हूँ। जब तक तू मुझे ऐसा सर्वस्व होकर नहीं समझता तब तक तू मुझे जान नहीं सकता।" इब्राहीम के जीवन में ऐसी कई बातें थीं, जो वह छोड़ना नहीं चाहता था।

उत्पत्ति १६ में इब्राहीम और सारा को चिन्ता हुई कि परमेश्वर उन्हें संतान देने के अपने वादे को कैसे पूरा करने जा रहा था। इसलिए उन्हों ने इस बात में परमेश्वर की मदद करने की सोची। पत्नी के सुझाव के अनुसार इब्राहीम ने उस की मिश्री दासी हाजिरा के साथ संबंध किया (१-४)। उन्हें जो पुत्र हुआ, उस का नाम इश्माएल था, जो अरबों का पिता बना। अगर इब्राहीम ऐसा काम न करता तो आज इस्राएलियों और अरबों के बीच जो युद्ध चल रहा है, वह न होता।

मेरा विश्वास है कि परमेश्वर के साथ इब्राहीम के संबंध में सारा और एक अड़चन बन गयी। तीसरी वेदी जो "संबंध की वेदी" है, वह लंबमान और क्षैतिज, दोनों प्रकार के संबंधों का प्रतिपादन करता है। ये दोनों संबंध अटूट हैं। अगर इब्राहीम को परमेश्वर के साथ संबंध होना था तो, उसे अपने सब संबंधों में परमेश्वर को उस का उचित स्थान देना चाहिए था। इसलिए इब्राहीम से लूत के बारे में कहके लूत को उस के जीवन से हटाना परमेश्वर का उद्देश्य था। हम जिन लोगों को अपने जीवन में परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध रखना चाहते हैं, उन लोगों का प्रतिनिधि है लूत। उसे इश्माएल को भी इब्राहीम के जीवन से हटाना था। परमेश्वर ने इब्राहीम को दर्शन दिया और इश्माएल को निकालने को कहा। इब्राहीम के जीवन में जो लोग मुख्य स्थान ग्रहण करना चाहते थे, उन्हें एक एक करके परमेश्वर निकालता है।

सारा एक अलग प्रकार की समस्या है। सारा ऐसे लोगों की प्रतिनिधि है, जिन्हें परमेश्वर हमारे जीवन में देता है, परन्तु जिन्हें हम नहीं मानते कि वे परमेश्वर से दिए गए लोग हैं। परमेश्वर को सारा के विषय में इब्राहीम से बोलने को उसे दो बार दर्शन

देना पड़ा। दूसरी बार उस ने कहा, "तेरी जो पत्नी सारै है, उस को तू अब सारै न कहना, उस का नाम सारा होगा। और मैं उस को आशीष दूँगा और तुझ को उस के द्वारा एक पुत्र होगा" (१७:१५-१६)। यह सुनकर इब्राहीम मुँह के बल गिर पड़ा और हँसा। सारा भी इसे सुनकर हँसी।

एक साल बाद इब्राहीम और सारा को एक पुत्र पैदा हुआ। परमेश्वर ने उसे इसहाक नाम देने को कहा, जिस का अर्थ इब्रानी में "हँसी" है। परमेश्वर चाहता था कि "विश्वास के ये वीर" सदा स्मरण करें कि जब यहोवा ने उन से अपनी योजना बतायी तब वे हँसे।

जब इसहाक युवक हुआ, तब इब्राहीम ने चौथी वेदी बनायी और यह वेदी बहुत मुख्य है। वह मोरिय्याह के पहाड़ पर बनायी गई। मोरिय्याह का अर्थ है "यहोवा उपाय करेगा, या यहोवा देगा।" अब तक की वेदियों के लिए इब्राहीम ने ही स्थान निश्चित किया, परन्तु यह अलग रीति से बनी, क्योंकि परमेश्वर ने उस के लिए जगह निश्चित की। इस बार वेदी पर की बलि-वस्तु को भी परमेश्वर ने बताया - इसहाक।

इसहाक इब्राहीम और सारा के बुढ़ापे का पुत्र था, यही नहीं, उन के पच्चीस साल के विश्वास का फल भी था। अब परमेश्वर उस पुत्र की बलि चाहता था। इब्राहीम परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने को पुत्र को पहाड़ के ऊपर ले चला। परन्तु जब इब्राहीम ने अपने को आज्ञाकारी साबित किया, तब अंतिम क्षण में परमेश्वर ने इसहाक की जान के बदले एक मेढ़ा दिया (२२:१-१९)। इब्राहीम ने उस जगह को "यहोवा यिरे " नाम रखा, जिस का अर्थ है, "यहोवा उपाय करेगा"। इब्राहीम की वेदियों के द्वारा प्रस्तुत विश्वास का रूपक प्रकट करता है कि परमेश्वर के चुने हुए पहाड़ पर "परमेश्वर को प्रथम स्थान" नामक वेदी पर, परमेश्वर ने पच्चीस साल के विश्वास का फल दिया। इस चौथी वेदी पर इब्राहीम ने इसहाक की बलि नहीं चढ़ाई। परन्तु "परमेश्वर को प्रथम स्थान" नामक वेदी पर इब्राहीम ने स्वयं की बलि चढ़ाई।

बाइबल के सन्देश का सार "परमेश्वर को प्रथम स्थान" शब्दों में मिलता है। परमेश्वर को प्रथम स्थान देना आसान भी नहीं, मुश्किल भी नहीं। या तो वह आप का परमेश्वर है या वह आप का परमेश्वर नहीं है। अंत में इब्राहीम के लिए वह उस का परमेश्वर हुआ।

अध्याय १०

तू कौन है

याकूब की कथा एक अविश्वसनीय कथा है। "याकूब" नाम का अर्थ है "पकड़नेवाला" क्योंकि याकूब और उस का भाई एसाव जुड़वे बालक थे और याकूब अपने हाथ से एसाव की एड़ी पकड़े हुए उत्पन्न हुआ। उस ने अपने नाम को सार्थक करने की रीति का जीवन चलाया। उस घर में दो तरह की संपत्ति ही थी और याकूब ने दोनों को छीन लिया। एक था बड़े बेटे का पहिलौठे का अधिकार, और दूसरा पिता का अनुग्रह। यह अनुग्रह इब्राहीम को परमेश्वर का वादा था, जो बाद में उन के पिता इसहाक को मिला और अब उस के बड़े बेटे को (एसाव) मिलना चाहिए था। याकूब के भाई एसाव ने एक पात्र पकाई हुई मसूर की दाल के लिए अपना पहिलौठे का अधिकार बेच दिया। याकूब ने अपने पिता को धोखा देकर अपने भाई को जो अनुग्रह मिलना था, उसे छीन लिया। पिता को धोखा देने और भाई से पहिलौठे का अधिकार अपनाने के बाद याकूब की माँ ने उस के पास आकर कहा कि "हे मेरे पुत्र, तुझे इस जगह से जाना होगा, क्योंकि तेरा भाई तुझे मारने की ताक में है। जब तक उस का क्रोध न उतरे, तब तक तू मेरे भाई लाबान के पास भाग जा और थोड़े दिन वहीं रह" (२७:४२-४३)।

पहली रात, जब याकूब घर से दूर था, उस ने एक सपना देखा, जिस में उस ने एक सीढ़ी देखी, जिस पर स्वर्गदूत चढ़ते-उतरते थे। इस सपने में परमेश्वर ने उसे दर्शन दिया और उस ने इब्राहीम से (याकूब के दादा) की गयी वाचा को और दृढ़ किया। परमेश्वर ने याकूब को भी अपनी योजना में सहयोगी बनाने का वादा किया और कहा, "मैं तेरे संग रहूँगा और जहाँ कहीं तू जाए वहाँ तेरी रक्षा करूँगा और तुझे इस देश

में लौटा ले आऊँगा; मैं अपने कहे हुए को जब तक पूरा न कर लूँ तब तक तुझ को न छोड़ूँगा" (२८:१५)।

भय-भक्ति से भरा याकूब सपने में से जाग उठा और कहने लगा, "निश्चय इस स्थान में यहोवा है; और मैं इस बात को नहीं जानता था" (१६)। फिर अपनी यात्रा जारी करने के पहले, उस ने अपने तकिए का पत्थर लेकर उस का खम्भा खड़ा किया, उस पर तेल डाल दिया और वादा किया कि परमेश्वर उसे जो कुछ दे, उस का दशमांश उसे दूँगा (१८-२२)।

याकूब का मल्लयुद्ध

आगे जो होता है, वह याकूब की कहानी का मुख्य भाग है। अपने मामा लाबान के पास बीस साल तक कठिन परिश्रम करने के बाद, याकूब को परमेश्वर के साथ एक आत्मगत आध्यात्मिक अनुभव हुआ। उस का वर्णन उत्पत्ति पुस्तक के अध्याय ३२ में है। हम पढ़ते हैं कि "कोई पुरुष आकर पौ फटने तक उस से मल्लयुद्ध करता रहा। जब उस ने देखा कि मैं याकूब पर प्रबल नहीं होता, तब उस की जांघ की नस को छुआ; सो याकूब की जांघ की नस उस से मल्लयुद्ध करते ही करते चढ़ गई। तब उस ने कहा, मुझे जाने दे, क्योंकि भोर होनेवाला है। याकूब ने कहा, जब तक तू मुझे आशीर्वाद न दे, तब तक मैं तुझे जाने न दूँगा। तब उस ने याकूब से पूछा, "तेरा नाम क्या है?" उस ने कहा, "याकूब"। फिर उस पुरुष ने कहा, "तेरा नाम अब याकूब नहीं, परन्तु इस्राएल होगा, क्योंकि तू परमेश्वर से और मनुष्यों से भी युद्ध करके प्रबल हुआ है। याकूब ने कहा, मैं विनती करता हूँ, मुझे अपना नाम बता। उस ने कहा, तू मेरा नाम क्यों पूछता है? तब उस ने उस को वहीं आशीर्वाद दिया। तब याकूब ने यह कहकर उस स्थान का नाम पनीएल रखाः कि परमेश्वर को आमने-सामने देखने पर भी मेरा प्राण बच गया है" (२४-३०)।

उस प्रश्न पर ध्यान दें, जो परमेश्वर याकूब से पूछता हैः तेरा नाम क्या है? बाइबल-काल में, जैसे हम ने पहले भी देखा है, नाम का बहुत महत्त्व है। नाम एक मनुष्य के बारे में कुछ कहता है; नाम एक मनुष्य का परिचायक है। इस प्रश्न से परमेश्वर याकूब का नाम नहीं पूछ रहा था। उस का प्रश्न वास्तव में यह था कि "तुम कौन हो?" और इस का उद्देश्य याकूब से उस का उत्तर जानना नहीं, परन्तु यह था कि याकूब ख़ुद उस का अर्थ जाने। "याकूब" नाम का अर्थ, हम ने पहले देखा कि

"पकड़नेवाला, छीननेवाला" है। अब उस का नया नाम "इस्राएल" बना, जो नाम उस की संतानों को भी होगा, उस का माना है, "युद्ध करनेवाला"।

इस कहानी में एक और महत्त्वपूर्ण बात है। मैं उसे "पंगु को अनुग्रह का किरीट" कहता हूँ। चूँकि याकूब स्वभाव से एक धोखेबाज़ था, परमेश्वर उसे तोड़े बिना अपना अनुग्रह उसे नहीं दे सकता था।

कभी कभी जब परमेश्वर किसी और मार्ग से हमें समझा नहीं पाता, तब उसे हमें किसी न किसी प्रकार से पंगु (लंगड़ा) करना है और इस तरह उस पर निर्भर होने को हमें मज़बूर करना है। याकूब से उस ने वही किया। अंत में याकूब ने परमेश्वर की बात समझी। जब याकूब अंत में एसाव से मिला - जो उस से लड़ा नहीं, परन्तु उसे गले लगाया और चुंबन किया - तो उस ने भाई एसाव से कहा कि उस के साथ उस की पत्नियाँ और बच्चे हैं और भेड़-बकारियाँ भी हैं, क्योंकि "परमेश्वर ने मुझपर अनुग्रह किया है" (३३:११)। वह यह बात स्पष्ट करता है कि उस ने उन्हें छीना नहीं, परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह से उस वह सब मिला है। अनुग्रह परमेश्वर की एक विशेषता है, जिस से वह हम पर अनुग्रहों की वर्षा करता है, जिन्हें पाने के हम योग्य नहीं हैं। हम सचमुच जो पाने के लायक होते हैं (दण्ड), वह परमेश्वर की दया हमें नहीं देती।

परमेश्वर हमें शिक्षा देता है कि हम अपने को उस के अधीन कर दें। कभी कभी वह हमें तोड़ना (टुकड़े-टुकड़े करना) भी पसन्द करता है, ताकि वह हमें अनुग्रह दे। हमें यह जानने को कि हम क्या होने को बनाये गए हैं, हमें तीन स्थानों की ओर देखना है। पहले, हमें ऊपर देखना है। बाइबल की कथाओं में हम देखते हैं कि मनुष्य को "ऊपर की ओर देखने" देने के लिए परमेश्वर को बहुत समय तक प्रयत्न करना है। परन्तु हमें अपने लिए परमेश्वर का उद्देश्य जानने के लिए परमेश्वर की ओर देखना अनिवार्य है। उसी ने हमें बनाया। हमारे जीवन की रूपरेखा उस के हाथ में ही है।

दूसरा, हमें अपने अन्दर की ओर देखना है। भजन १३९ में दाऊद ने इस प्रकार प्रार्थना की, "हे ईश्वर, मुझे जांचकर जान ले! मुझे परखकर मेरी चिन्ताओं को जान ले! और देख कि मुझ में कोई बुरी चाल है कि नहीं, और अनन्त के मार्ग में मेरी अगुवाई कर!" (२३-२४)। हमें परमेश्वर से प्रार्थना करनी है कि वह हमारे मन में और जीवन में देखे और हमें दिखावे कि हमारा क्या होना उस का उद्देश्य है।

अंत में हमें चारों ओर देखना है। वह व्यक्ति , जो ऊपर की ओर और अन्दर की ओर देख चुका, अब चारों ओर देखने को भी तैयार होगा, लोगों से संबंध रखेगा और इस संसार में परमेश्वर की योजना का अंग होगा।

क्या आप ने कभी ऊपर परमेश्वर की ओर देखा है, यह जानने को कि उस योजना में तुम्हारी स्थिति के बारे में वह क्या कहता है? आप अपने मन की हालत जानने को कितनी बार अन्दर देखते हैं? क्या आप चारों ओर देखते हैं यह देखने को कि अपने जीवन से संबंधित लोगों के साथ आप के संपर्क के बारे में परमेश्वर की क्या इच्छा है?

अध्याय ११

कौन अधिकारी है?

हम ने अब इब्राहीम के बारे में सीखा जिस ने हमें विश्वास की शिक्षा दी। हम ने याकूब को देखा, जिस ने हमें परमेश्वर के अनुग्रह के बारे में समझाया। अब हम यूसुफ के बारे में सीखने जा रहे हैं, जिस की कथा उत्पत्ति पुस्तक के अंतिम १४ अध्यायों में है। यूसुफ बाइबल के पात्रों में बहुत पवित्र स्वभाववालों में एक है। बाइबल के अन्य पात्रों के विषय में परमेश्वर उन की खूबियों के साथ उन की कमज़ोरियाँ भी दिखाता है। परन्तु यूसुफ इस का अपवाद है। (उस के अलावा एक है दानिय्येल, जिस के बारे में हम बाद में सीखेंगे।)

यूसुफ की कथा

यूसुफ की कथा वास्तव में परमेश्वर की रक्षा की कथा है। इस कहानी का सारांश नए नियम में एक ही वाक्य में दिया गया है, रोमियों ८:२८, जो कहता है, "हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम करते हैं उन के लिए सब बातें मिलकर भलाई ही को उत्पन्न करती हैं, अर्थात् उन्हीं के लिए जो उस की इच्छा के अनुसार बुलाए हुए हैं।"

जब यूसुफ के भाइयों ने जाना कि वह कौन था, तब वे भयभीत हुए; परन्तु उस ने उन्हें ये सांत्वना के शब्द सुनाए - उस के शब्द ऐसे थे जो हमें भी समझाते हैं कि परमेश्वर हमारे जीवन में काम करता रहता है:

"अब तुम लोग मत पछताओ, और तुम ने मुझे यहाँ बेच डाला, इस से उदास मत हो; क्योंकि परमेश्वर ने तुम्हारे प्राणों को बचाने के लिए मुझे आगे से भेज दिया है।" इसलिए तुम ने मुझे यहाँ नहीं भेजा, परन्तु परमेश्वर ने भेजा (उत्पत्ति ४५:५, ७-८)।

यूसुफ के पिता याकूब की कथा में हम ने एक मनुष्य को देखा, जिस का जीवन खूब चल रहा था, परन्तु यह सब उस के कामों का फल नहीं था। परमेश्वर ने ही वास्तव में सब घटनाओं को होने दिया। यूसुफ भी इस सत्य के लिए दृष्टांत है, एक दूसरे प्रकार से। उस की कथा में हम ऐसे एक मनुष्य को देखते हैं, जिस का जीवन बहुत सफल नहीं दिखाई दिया। वह अपने भाइयों के द्वारा गुलामी में बेचा गया; उस पर अन्याय से दोषारोप किया गया। उस की मदद करने का वादा करनेवाले उसे भूल गए। परन्तु इन सब परिस्थितियों के लिए कारण यूसुफ के काम नहीं थे। उस की कठिन समस्याएँ और परिस्थितियाँ इसलिए नहीं हुईं कि उस ने उन में पड़ने के लायक कुछ किया; परन्तु इसलिए कि परमेश्वर की महिमा हो और उस की योजना की पूर्ति हो।

आज के जीवन में उस के प्रयोग

इस कथा के कई व्यावहारिक प्रयोजन हमारे जीवन में हैं। पहले, यूसुफ के संबंधों के बारे में विचार करें, जो उस के अपने पिता और भाइयों के साथ थे। वे बुहत अच्छे संबंध नहीं थे! याकूब एक आदर्श पिता नहीं था। यूसुफ के प्रति उस का पक्षपात उसे ख़ुशी के बदले दुख ही लाया और दूसरे पुत्रों के प्रति पिता का यह व्यवहार अनुचित माना जा सकता है। हम में किस के माँ-बाप महान कहे जा सकते हैं? अपने बच्चों के प्रति किस का संबंध बहुत श्रेष्ठ माना जा सकता है? हम ने अपने परिवार को नहीं चुना, परन्तु हमारे कुटुंब के लोग हमारे जीवन को रूप देते हैं। उन संबंधों के कारण हमारे कितनों के जीवन टूटे हैं, कितनों ने मानसिक पीड़ाएँ सही हैं और जीवन में क्लेश भी। परन्तु यूसुफ की कहानी का सन्देश यह है कि परमेश्वर ही हमारे जीवन की परिस्थितियों का नियंत्रण-कर्ता है और ऐसी कोई स्थिति इतनी बुरी नहीं, जिस से परमेश्वर छुटकारा नहीं दे सकता अथवा जिस में से कुछ भलाई उत्पन्न नहीं कर सकता। चाहे आप के माँ-बाप गलत व्यवहार करते हैं, तो भी, परमेश्वर उन के प्रभाव का उपयोग कर सकता है। यूसुफ के एकता रहित कुटुंब की कठिनाइयों ने परमेश्वर की कृपा से यूसुफ को मिश्र देश में पहुँचा दिया और उस के चुने हुए कुटुंब को भुख-

मरी से बचाया, जिस के द्वारा मसीह इस संसार में आनेवाला था। आप के भी प्रेम और एकता से रहित कुटुंब के होने की विपत्ति की ओर आप की प्रतिक्रिया का उपयोग परमेश्वर आप के जीवन को विशेष रूप देने में कर सकता है। एक दिन आप देख सकेंगे कि परमेश्वर के द्वारा आप के जीवन में लाई हुई परिस्थितियों के द्वारा परमेश्वर कैसे आप के जीवन में अपने उद्देश्य को पूरा करने को आप को तैयार कर रहा है।

अध्याय १२

उत्पत्ति का अन्त और निर्गमन का आरंभ

जब हम बाइबल का अध्ययन करते हैं और विशेषकर जब हम पुराने नियम को देखते हैं, तब हम इन विशेष लोगों का एक जाति में विकास करने पर सोचना चाहते हैं। उत्पत्ति पुस्तक में हम देखते हैं कि ये लोग इब्राहीम से उपन्न हुए। याकूब ने उन्हें 'इस्राएल' नाम दिया और यूसुफ ने उन्हें भुख-मरी से बचाया। उत्पत्ति पुस्तक के अंत में इस जाति में केवल बारह गोत्र थे, जो सब मिश्र देश में थे।

जब निर्गमन की पुस्तक शुरू होती है, इन लोगों का समूह, जो अब तक एक जाति नहीं बना था, बारह गोत्रों से बढ़कर एक बड़ी संख्या के जन-समूह बने। उन के एक जाति होने के पहले उन के एक नेता होने की ज़रूरत थी। निर्गमन पुस्तक में हमें परमेश्वर के इन लोगों के इतिहास में सब से महान एक नेता मूसा का ज़िक्र है।

मूसा को मिश्र में पड़े हुए इन अनगिनत गुलामों की अगुवाई करने में एक बड़ी समस्या यह थी कि उन के कोई नियम नहीं था। कोई व्यवस्था नहीं थी। उन लोगों पर शासन चलाने का कोई निश्चित ढाँचा नहीं था। इसलिए इस पुस्तक में हम परमेश्वर से दिये हुए नियमों की पहली सूची पाते हैं, सैकड़ों आज्ञाएँ, जो दस आज्ञाओं में संक्षिप्त किया गया है।

मूसा के एक और समस्या थी; उस के लोग ठीक थे, परन्तु वे गलत स्थान पर थे। वे मिश्र में गुलाम होकर रहते थे। परमेश्वर उन्हें छुड़ाना चाहता था। "निर्गमन" शब्द का अर्थ है "बाहर जाने का मार्ग"। इस पुस्तक के अधिकांश भाग में इस्राएलियों को गुलामी से छुड़ाने का मार्ग निकालने की कथा है।

निर्गमन की पुस्तक इतिहास होने के साथ रूपक (प्रतीक) भी है। इस्राएली गुलामी में थे; रूपक के अर्थ में मसीह के बिना हम पाप की दासता में बंधे हुए हैं। निर्गमन पुस्तक इस्राएलियों को शारीरिक बन्धन से निकालने की समस्या का प्रतिपादन करती है; पूरी बाइबल लोगों को पाप के आत्मिक बन्धन से छुड़ाने की समस्या पर विचार करती है।

परमेश्वर ने पाप के बन्धन से छुड़ाए जाने का जो मार्ग आप को दिया है, उस से क्या आप मुक्त हुए हैं? अगले अध्याय में हम निर्गमन पुस्तक का अध्ययन शुरू करेंगे। उसे पढ़ना शुरू कीजिए, अपने से ये तीन प्रधान प्रश्न पूछते हुए पढ़िएः वह क्या कहता है? उस का अर्थ क्या है? मैं उस का प्रयोग कैसे अपने जीवन में कर सकता हूँ?

अध्याय १३

जो कोई नहीं है, उसे कोई बनाना

निर्गमन की पुस्तक को समझने के लिए आप को उस के लोगों को, उन की समस्या को और भविष्यद्वक्ता को समझना है। निर्गमन की पुस्तक परमेश्वर के लोगों की और मूसा की अगुवाई में गुलामी से उन के बचने की कथा है।

तीन मुख्य सन्देश

जैसे हम ने देखा, निर्गमन शब्द का अर्थ है बाहर जाने का मार्ग। निर्गमन पुस्तक का सन्देश यह है: इस्राएलियों के लिए इस दासता से बचने का मार्ग क्या है? यह दासता पहले पहल शारीरिक दासता है और उस दासता से उन का छुटकारा बाइबल के आश्चर्यकर्मों में एक है। वह एक सच्ची कहानी है। वह ऐतिहासिक बात है। वह कैसे हुआ और उस में क्या क्या घटनाएँ हुईं, वही निर्गमन की पुस्तक का उत्तेजनात्मक सन्देश है, यह इस पुस्तक का पहला उद्देश्य है।

उस का प्रयोग करने से, वह पुस्तक ऐतिहासिक होने के साथ एक सुन्दर प्रतीकात्मक सत्य भी प्रस्तुत करती है, जिस का प्रयोग हमारे जीवन के भक्ति के क्षेत्र में किया जा सकता है। उस का प्रयोग यह है कि हम भी गुलाम हैं। हम वह नहीं करते जो हम करना चाहते हैं; हम वही करते हैं जो हम करने को मज़बूर हैं। अगर हम वही करते हैं, जो हमें करना पड़ता है, और वह नहीं जो हम करना चाहते हैं, तो हम स्वतंत्र नहीं होते। अगर हम स्वतन्त्र नहीं हैं, तो हम दास हैं और हमें भी अपनी दासता से बचने के उपाय की ज़रूरत है। हमें पाप की दासता से छुटकारा पाना

चाहिए। उद्धार शब्द हमारे लिए परिचित शब्द है, उस का अर्थ "छुटकारा" शब्द ही का है, विशेषकर पुराने नियम में। उद्धार वास्तव में पाप से छुटकारा है। वह पाप के वर्तमान और भविष्य के दण्ड से ही नहीं, परन्तु पाप की शक्ति से भी मुक्ति है।

हमें निर्गमन पुस्तक का अध्ययन करते समय भविष्यद्वक्ता मूसा के चरित्र के अध्ययन पर ध्यान देना है। जब आप बाइबल के परमेश्वर के भक्त जनों पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि यह मूसा दूसरों से बहुत अधिक ऊँचा है। मैं विश्वास करता हूँ कि मूसा बाइबल का सब से महान भक्त मनुष्य है। जब आप परमेश्वर के काम के लिए उस की देन के बारे में सोचते हैं, तब आप उस की महानता की प्रशंसा करते हैं। इब्राहीम परमेश्वर के लोगों का पिता था, जैसे हम ने पहले कहा, याकूब ने उन्हें नाम दिया और यूसुफ ने उन्हें बचाया। जब आप परमेश्वर के जनों के लिए मूसा के कामों के बारे में सोचते हैं, तब आप उसकी महानता की प्रशंसा करते हैं। इब्राहीम परमेश्वर के लोगों का पिता था, जैसे हम ने पहले कहा, याकूब ने उन्हें नाम दिया और यूसुफ ने उन्हें बचाया। अब परमेश्वर के जनों के लिए मूसा के कामों के बारे में सोचिए। निर्गमन की पुस्तक परमेश्वर के काम के लिए मूसा की देन का वर्णन करती है।

परमेश्वर के काम के लिए मूसा की देन

सब से पहली बात है, मूसा ने दासता में पड़े लोगों को स्वतन्त्रता दी। हम नहीं जानते कि गुलामी क्या है। जब लोग कैद में बन्द होते हैं, तब उन का एकमात्र आग्रह वहाँ से छुटकारा पाने का है। जब मूसा ने उन्हें आज़ादी दी तब उस ने उन के जीवन की एक बड़ी अभिलाषा पूरी कर दी। फिर मूसा ने उन्हें वह दिया, जो नयी आज़ादी पानेवालों की सब से बड़ी ज़रूरत हैः शासन-व्यवस्था या नियम।

आत्मिक क्षेत्र में मूसा ने उन्हें दो बहुमूल्य बातें दीं; उस ने उन्हें परमेश्वर का वचन दिया और उन्हें आराधना की पद्धति दी। जब लोग पूरी बाइबल पढ़ते हैं, तब वे उत्पत्ति की पुस्तक की पढ़ाई ख़ुशी से करते हैं, विशेषकर उस के पात्रों के स्वभाव का अध्ययन। फिर निर्गमन का नाटक आता है, मिश्र देश से छुटकारा। उस का अध्ययन भी खूबी से चलता है। परन्तु निर्गमन के अंतिम भाग की और लैव्यपुस्तक की पढ़ाई से वे ऊब उठते हैं। वह भवन-निर्माताओं के लिए आवश्यक विवरणों और निर्देशों की पुस्तक जैसा लगता है। वह सचमुच वही है। उस पुस्तक के उद्देश्य को आप समझें

तो आप को उस की पढ़ाई में उत्साह आता है। निर्गमन पुस्तक का अंतिम भाग और सारी लैव्यपुस्तक आराधना के नियमों - क्रमों की पुस्तक है।

हम अपने आप आराधना करना नहीं जानते। जैसे यीशु के शिष्यों ने उस से कहा कि वह उन्हें प्रार्थना करना सिखावे, वैसे इस्राएलियों को आराधना की विधि सिखाने की ज़रूरत थी - हमें भी उस की ज़रूरत है। उन कलीसियाओं में जिन्हें हम "लिटरजिकल" (कीर्तनों को प्राधान्य देना वाली) कहते हैं, पादरी कलीसिया के लोगों की ओर मुड़कर नहीं खड़ा होता, वह वेदी की ओर ही मुँह करता है और लोगों की ओर पीठ। ये कलीसियाएँ और यहूदी आराधनालय उस आराधना-विधि से उत्पन्न हुए हैं, जो आराधना करने के उस छोटे तंबू में पाया जाता था, जो परमेश्वर ने मूसा से बनाने को कहा।

मैं इस रीति से मूसा के जीवन को देखना पसन्द करता हूँ। निर्गमन पुस्तक की बड़ी समस्या दासता की समस्या है। उस का हल है छुटकारा। परमेश्वर ने मूसा को बुलाके कहा कि उसे इस्राएलियों को छुटकारा देना है। उस के प्रयोग के बारे में कहें तो, निर्गमन की पुस्तक छुटकारा या उद्धार का दृष्टांत है, तो मूसा का जीवन एक उद्धारकर्ता होने का एक महान दृष्टांत है।

मूसा की कथा

पाप की शक्ति से अपने आप छुटकारा पाना अपने जीवन का सब से महान अनुभव हो सकता है। दूसरा महान अनुभव है, किसी के छुटकारे का माध्यम होना।

मूसा के जीवन-काल के तीन भागों पर विचार करें; हर एक भाग ४० साल की अवधि का था। प्रथम चालीस वर्षों में परमेश्वर ने मूसा को यह मुख्य पाठ सिखाया कि "हे मूसा, तू कोई नहीं है।"

बहुत असाधारण परिस्थितियों के कारण मूसा फिरौन के महल में पाला पोसा गया (निर्गमन १-२:१०)। शायद इस के कारण उस ने सोचा होगा कि वह कोई महान व्यक्ति है। परन्तु लगभग मूसा के चालीस साल की उम्र में परमेश्वर उसे समझाने में सफल हुआ कि वह सचमुच कोई भी नहीं है (२:११-१५)।

परमेश्वर ने मूसा को जो दूसरी शिक्षा दी वह उस के जीवन के दूसरे ४० सालों के भाग में थी। इस बार सन्देश यह था कि, "मूसा, तू कोई है, क्योंकि मैंने तुझे चुना

है और मैं तेरे संग हूँ।" मूसा के प्रथम चालीस वर्षों के अंत में, एक दिन मूसा बाहर गया और इब्रानी गुलामों के कष्टों को देखा, वह जानता था कि वह भी एक इब्रानी गुलाम था। निर्गमन अध्याय २, वाक्य ११ में कहा गया है, "उन दिनों में ऐसा हुआ कि जब मूसा जवान हुआ और बाहर अपने भाई-बन्धुओं के पास जाकर उन के दुखों पर दृष्टि करने लगा; तब उस ने देखा कि कोई मिश्री जन मेरे एक इब्री भाई को मार रहा है।" ये वाक्य हमें यह बात प्रकट करते हैं कि मूसा के मन में उन की ओर सहानुभूति हुई और उन के कष्टों का उस के मन में गहरा प्रभाव पड़ा।

उस वक्त परमेश्वर मूसा से मानों कहता है, हे मूसा, यह उद्धारकर्ता होने का मार्ग नहीं है। तुझे चालीस सालों के लिए इस की शिक्षा पानी है और तुझे लोगों को उन की गुलामी से छुड़ाने के मार्ग पर विचार करना चाहिए। चालीस साल बाद एक दिन जब मूसा मरुभूमि में था, तब उस ने एक कंटीली झाड़ी के बीच आग की लौं देखी। मरुभूमि की तीव्र गर्मी में यह दृश्य असाधारण नहीं था। अकसर ये झाड़ियाँ पांच निमिष में जलकर भस्म हो जाएँगी। परन्तु इस बार झाड़ी जल रही थी, पर भस्म नहीं हो रही थी। इसलिए मूसा उसे जांचने को चला (३:१-३)। तब क्या होता है?

जब यहोवा ने देखा कि मूसा देखने को मुड़ा चला आता है, तब परमेश्वर ने झाड़ी के बीच से उस को पुकारा कि, हे मूसा। मूसा ने कहा, क्या आज्ञा। तब उस ने कहा, इधर पास मत आ, और अपने पांवों से जूतियों को उतार दे, क्योंकि जिस स्थान पर तू खड़ा है, वह पवित्र भूमि है। फिर उस ने कहा, मैं तेरे पिता का परमेश्वर, इब्राहीम का परमेश्वर , इसहाक का परमेश्वर और याकूब का परमेश्वर हूँ। तब मूसा ने, जो परमेश्वर की ओर देखने से डरता था, अपना मुँह ढांप लिया (४-६)।

इस भाग में परमेश्वर मूसा से जो कहना चाहता था, वह यह है कि तू ने गुलामी में पड़े इस्राएलियों का भारी कष्ट देख लिया है और उन से सहानुभूति करके तू उन का कष्ट दूर करने को कुछ करना चाहता है, यह तो बड़ी प्रधान बात नहीं है। परमेश्वर जलती हुई झाड़ी के पास मूसा से कहता है कि मुख्य बात यह है कि परमेश्वर ने उन की समस्या को समझकर उस का हल करने को कुछ करना चाहता है। इसलिए परमेश्वर उसे आज्ञा देता है कि वह फिरौन के पास जाए और इस्राएलियों को छुड़ाने की माँग करे।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मूसा को यह आज्ञा सुनकर कितना बड़ा

धक्का लगा होगा? मूसा ने एक मिश्री को मारा और अपने लोगों को बचाना चाहा, पर वह इस प्रयत्न में सफल नहीं हुआ; इस के द्वारा परमेश्वर ने मूसा को दिखाया कि वह कोई नहीं है। अब जलती झाड़ी के पास परमेश्वर मूसा को विश्वास दिला रहा था कि वह कोई है और वह यह महान काम कर सकता है। ये दो पाठ - मूसा कोई नहीं है और जब परमेश्वर उस के संग है, तब वह कोई होता है - नम्रता (विनय) की शिक्षा देते हैं। परमेश्वर ने मूसा को इन दो बातों की शिक्षा दी, ताकि वह मिश्र से इस्राएलियों को छुड़ाने का मानवीय माध्यम बने।

अकसर अधिकारी लोग प्रधान काम करने को बहुत योग्य व्यक्तियों को चुनते हैं परन्तु बाइबल में ऐसा लगता है कि परमेश्वर अपने काम करवाने के लिए सब से अयोग्य व्यक्तियों को चुनता है। अगर आज हम लोगों का उद्धार करने को परमेश्वर के द्वारा उपयुक्त किये जाते हैं, अथवा हम किसी मित्र या बंधु को पाप के बन्धन से मुक्त देखना चाहते हैं तो हमें यह बात याद करनी है कि छुड़ानेवाले हम नहीं हैं, छुड़ानेवाला परमेश्वर है।

हमारे लिए एक पाठ

एक नम्र व्यक्ति समझता है कि वास्तव में कौन काम करता है। विनीत व्यक्ति कहता है कि "अपनी योजना के अनुसार परमेश्वर के लोगों के बीच परमेश्वर के उद्देश्यों को पूरा करने को अपनी सामर्थ का प्रयोग करना परमेश्वर की योजना है।"

निर्गमन पुस्तक में परमेश्वर एक अंगूर-लता के समान चाहता है कि डालियाँ उस में लगी रहें। परमेश्वर हमेशा एक माध्यम के द्वारा काम करता है। इसलिए उसे अपने काम करनेवाले मूसा को ढूँढ़ना है। उसे बुलाकर उसे विश्वास दिलाना है। उसे मूसा को यह समझाना है कि, "हे मूसा, तू कोई नहीं है। यह काम करने वाला तू नहीं है। जब तू यह बात समझता है, तब तू ऐसा कोई बनता है, जिस का मैं उपयोग कर सकूँ, जिस के माध्यम से मैं काम कर सकूँ और तू यह महान आश्चर्यकर्म देखेगा कि जिस ने यह शिक्षा पायी है कि वह कोई नहीं है, पर उस के द्वारा मैं कितना बड़ा काम कर सकता हूँ।"

पाठ १४

मानवीय बाधाएँ और आत्मिक रहस्य

हम ने देखा कि परमेश्वर ने मूसा को इस्राएलियों को छुड़ाने की सेवा करने को तैयार किया। इस पाठ में हम उन रहस्यों का पता लगाएँगे, जो परमेश्वर ने उस को प्रकाशित कर दिया, जो उसे परमेश्वर से दिये जाने वाले छुटकारे का माध्यम बना देगा। अब हम देखेंगे कि छुटकारा दिलाने को परमेश्वर ने मूसा को बुलावा दिया तो उस की प्रतिक्रिया क्या थी।

छुटकारे का माध्यम बनने को परमेश्वर के रहस्यों का सार यह है कि, "छुटकारा देनेवाला तू नहीं है, परन्तु मैं हूँ। तू अपनी सामर्थ से किसी को छुड़ा नहीं सकता। परन्तु मैं कर सकता हूँ और मैं तेरे साथ रहूँगा। तुझे इन लोगों की रक्षा करने की इच्छा नहीं है, परन्तु मुझे है। ये रहस्य जैसे मूसा के जीवन की सफलता के लिए आवश्यक सत्य थे, वैसे हमारे जीवन के लिए भी। परमेश्वर ने मूसा को जलती झाड़ी के पास यह शिक्षा दी।

मूसा को चिंता थी कि उस की बोली ठीक नहीं थी। इस का माना यह हो सकता है कि वह बातों को स्पष्ट व्यक्त नहीं कर सकता था। शायद वह हकलाता था या उस की वाणी अस्पुट थी। परन्तु वह बाधा जो कुछ भी थी, परमेश्वर उस के बारे में जानता था; परन्तु इस के बावजूद वह चाहता था कि मूसा फिरौन के पास जाए और इस्राएलियों का छुटकारा माँगे। शायद मूसा की उस बोली की समस्या के कारण ही परमेश्वर ने वह माँग मूसा से की। परमेश्वर का यह उद्देश्य था कि यह छुटकारा केवल अपनी सामर्थ का फल हो, और किसी मनुष्य की सामर्थ या प्रभाव का फल नहीं हो। इसलिए

उस ने चाहा कि एक इब्रानी चरवाहा (जिन की ओर मिश्रियों को सख्त नफ़रत थी), वह भी हकलाने वाला, फिरौन के सामने अपने लोगों के छुटकारे की माँग करके चले। जब उस के लोग छुड़ाए जाएँगे, तब कोई यह न कहे कि, "वह मूसा का महान काम था। वह कितना अच्छा बोलता था! वह कितना शक्तिशाली था!" परमेश्वर की इच्छा यह नहीं थी। इसलिए उस ने अपनी पसन्द के पुरुष को चुना।

निर्गमन ४:११ में परमेश्वर के वचन देखिए : "मनुष्य का मुँह किस ने बनाया? और मनुष्य को गूँगा या बहरा, देखनेवाला या अंधा मुझ यहोवा को छोड़ कौन बनाता है?"

कुछ लोगों की समझ में ये प्रश्न नहीं आते। यूसुफ के जीवन में परमेश्वर ने जो पाठ सिखाया, वही यहाँ भी वह दुहराता है। वह है कि आप के जीवन के सब कार्य परमेश्वर से निश्चित किए गए हैं। आप इस के कारण नहीं समझते, परन्तु परमेश्वर अपनी इच्छा से हमें बनाता है। परमेश्वर मानों मूसा से कह रहा था कि "अगर मैं अपने काम के लिए एक महान वक्ता को पाना चाहता, तो मैं तुझे वैसा बनाता।"

फिर परमेश्वर ने उस से पूछा कि उस के हाथ में क्या है? मूसा ने कहा कि वह चरवाहे की लाठी है। परमेश्वर ने मूसा से उसे नीचे डालने को कहा। जब मूसा ने लाठी नीचे डाली, तब वह ऐसी चीज़ बनी (सांप) जिस का उपयोग परमेश्वर ने मूसा के काम के अंत तक किया। फिर परमेश्वर ने उस से हाथ "जाकिट" (मिर्जई) के अन्दर रखकर फिर बाहर लेने को कहा; हाथ को बाहर लिया तो वह कोढ़ के कारण श्वेत हो गया था। ऐसा फिर करने को कहा, तब मूसा ने फिर ऐसा किया और हाथ चंगा हुआ (४:२-७)।

मूसा के इतने विरोध प्रकट करने के बावजूद परमेश्वर ने उस की ओर बहुत धैर्य दिखाया। अंत में जब मूसा ने उस से कहा, "किसी दूसरे को भेज" (१३), तब परमेश्वर का क्रोध मूसा पर भड़का। मैं पूछना चाहता हूँ कि जब परमेश्वर तुझे छुटकारा देने को नियुक्त करता है, तब तू ऐसे विरोध प्रकट करता है? क्या अंत में तू कहता है कि "किसी दूसरे को भेज, मुझे नहीं?" बाइबल में हम कई पात्रों को देखते हैं, जो परमेश्वर से कहते हैं कि, "मैं नहीं जाना चाहता।" मूसा ने भी ऐसा ही कहा।

अंत में मूसा गया और काम में सफल भी हुआ। परन्तु सफलता उस की नहीं थी, परमेश्वर की थी।

कुछ लोगों में बड़ी योग्यता है, पर वे काम करने नहीं आते। कुछ लोगों में कम योग्यता है, तो भी उन में काम करने की तैयारी है। बाइबल की यह शिक्षा है कि, आप की योग्यता कैसी भी हो, अधिक हो या कम, उस की परवाह नहीं; मुख्य बात है काम करने की आप की सन्नद्धता। परमेश्वर हमें हमारे पद, हमारी इच्छा आदि के कारण अपने काम के लिए उपयुक्त नहीं करता।

परमेश्वर ने मूसा को जिन महान सत्यों की शिक्षा दी, उस का सार इस छोटी कविता में है:

चार आत्मिक रहस्य

मैं कोई नहीं हूँ, पर वह है
और वह मेरे संग है।
मैं कर नहीं सकता, पर वह कर सकता है,
और वह मेरे संग है।
मैं करना नहीं चाहता, पर वह चाहता है,
और वह मेरे संग है।
मैं ने नहीं, उस ने किया,
क्योंकि वह मेरे संग था।
मैं इन चार बातों को "चार आत्मिक रहस्य" कहता हूँ।

मैं जब तक व्यक्तिगत रीति से इन आत्मिक तत्त्वों को अपने जीवन और सेवा में प्रयुक्त नहीं करता, तब तक मैं एक सफल मनुष्य या एक सफल मसीही सेवक नहीं हो सकता। मेरा विश्वास है कि आप भी अपने जीवन में इन चार आत्मिक रहस्यों का प्रयोग करना सीखेंगे, जिन्हें मूसा ने उस झाड़ी के पास सीखा, जो जलती थी, परन्तु भस्म नहीं होती थी।

पाठ १५

भारी विपत्तियाँ, आश्चर्यकर्म और छुटकारे के सिद्धान्त

अब हम निर्गमन पुस्तक की छुटकारे की कथा पर ध्यान देंगे। जैसे मैं ने पहले कहा 'छुटकारा' और "उद्धार", इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है। इस पुस्तक में जब हम परमेश्वर के लोगों के छुटकारे और उद्धार के अनुभव को देखते हैं, तब हम परमेश्वर की शक्ति को देखते हैं। इस का कारण यह है कि परमेश्वर की सामर्थ के बिना उद्धार की संभावना ही नहीं है। निर्गमन पुस्तक में परमेश्वर की शक्ति एक अनुपम ढंग से प्रकट हुई - दस भारी विपत्तियों के रूप में।

भारी विपत्तियाँ

इन दस विपत्तियों से जो सन्देश मिलता है, वह सारी बाइबल की पुस्तकों में, उत्पत्ति से प्रकाशितवाक्य तक सिखाए हुए सत्य का एक चित्र है। १ यूहन्ना ४:४ में इस सत्य का प्रतिपादन ऐसा हुआ है: "जो तुम में है, वह उस से जो संसार में है, बड़ा है।" यही इस सन्देश का भक्तिपूर्वक प्रयोग है।

निर्गमन ५:१ में मूसा और हारून फिरौन से पहली बार माँग करते हैं कि इस्राएलियों को छुड़ावे। परन्तु फिरौन सिर्फ़ उन का परिहास करता है। उन्हों ने जो कारण बताया उस का कोई मूल्य फिरौन की दृष्टि में नहीं था। "इस्राएल का परमेश्वर यों कहता है कि मेरी प्रजा के लोगों को जाने दे कि वे जंगल में मेरे लिए पर्व्व करें" (१)।

इस कथा में, हम एक बात देखते हैं, जिसे हम पाप की शक्ति से "छुटकारे के सिद्धांत" नाम देते हैं। मूसा फिरौन से लोगों के छुटकारे की मांग करता है और जब फिरौन उस से इनकार करता है, तब ये विपत्तियाँ आती हैं। अंत में ये विपत्तियाँ छुटकारे की प्रेरक हुईं। धीरे धीरे फिरौन परमेश्वर की सामर्थ के अधीन आने लगा। जब फिरौन हारता रहा, तब मूसा और फिरौन के बीच के संवाद पर ध्यान दीजिए। कई लोग सोचते हैं कि मूसा हमारे उद्धारकर्ता यीशु मसीह का चित्र है और फिरौन बुराई की मूर्ति, शैतान, का चित्र। अगर मूसा और फिरौन की मुठभेड़ की गति को हम समझ सकते हैं तो हम आज अपने उद्धार में यीशु मसीह और शैतान के बीच के संघर्ष की गति को समझ सकते हैं।

उदा. के लिए, निर्गमन ८:२५ में, जब मूसा ने फिरौन से मांग की कि, इस्राएलियों को जाकर अपने यहोवा को बलिदान चढ़ाने की अनुमति दे, तब फिरौन कहता है, "इसी देश में अपने परमेश्वर के लिए बलिदान करो! तुम मिश्र देश नहीं छोड़ सकते"।

कई विपत्तियों के आने के बाद फिरौन फिर लोगों को जाने की और पर्व्व मनाने की अनुमति देता है। "तुम जाओ, परन्तु बहुत दूर न जाना" (२८)। इस में, नए विश्वासी पर जो जो दबाव पड़ते हैं, उन का चित्र मिलता है। "ठीक है, अगर तू मसीही होना चाहता है, तो हो जा, परन्तु मसीहियों के जैसे बहुत कट्टरवादी न बनना। मेरी आशा है कि तू बहुत दूर न जाएगा और इस विश्वास को बहुत गंभीरता से पकड़े नहीं रहेगा।"

अध्याय १०:८-१० में और भी कई विपत्तियाँ आयीं, तो फिरौन थोड़ा और ढीला होता है: "चले जाओ, परन्तु केवल तुम पुरुष लोग ही जाकर यहोवा की उपासना करो। परन्तु तुम अपने बच्चों को नहीं ले जा सकते। वे मिश्र देश में ही रहें।" जब शैतान देखता है कि हमारे विश्वास में बाधा नहीं डाल सकता, तब वह हमारे बच्चों को पाने की कोशिश करता है। यह आश्चर्य की बात है कि कितने लोग, जो विश्वासी हुए हैं, "अपने बच्चों को मिश्र में ही छोड़ गए हैं।" फिर और कुछ विपत्तियों के होने के बाद, फिरौन कहता है कि जाओ, अपने बच्चों को भी लेके जाओ, परन्तु अपनी भेड़-बकरी और गाय-बैल को छोड़ जाओ (१०:२४)। यह शैतान के प्रलोभन के जैसे है, कि जो लोग विश्वास में आते हैं, उन्हें वह उन की संपत्ति की लालच दिखाता है।

इधर शैतान की चालें फिरौन के स्वरूप में मूर्तिवत् हुई हैं। छुटकारे का पहला

सिद्धांत हैः शैतान से समझौता न कर। वह तुझे मिश्र (संसार) में रहने की और विश्वास में न आने की लालच दिखाने में सफल नहीं होवे। अपने बच्चों को और संपत्ति को मिश्र में छोड़ने का प्रलोभन देने की अनुमति शैतान को कभी मत देना।

आश्चर्यकर्म

अगर आप पाप में डूबे हैं, जैसे अधिकांश लोग होते हैं, उस से निकलने का क्या मार्ग है? निर्गमन पुस्तक का सन्देश है कि पाप के बन्धन से छुटकारा पाने को आश्चर्यकर्म का होना अनिवार्य है। फसह या अखमीरी रोटी के पर्व्व से संबंधित एवं लाल समुद्र को पार करते समय जो आश्चर्यकर्म होते हैं, उस तरह के आश्चर्यकर्मों की हमें ज़रूरत है। ये आश्चर्यकर्म फिरौन की अधीनता से इस्राएलियों के अंतिम छुटकारे के दृश्य प्रकट करते हैं।

अंतिम विपत्ति परमेश्वर का क्रोध प्रकट करती है, जो मिश्र के सब पहिलौठों की जान नष्ट करती है। जब परमेश्वर के जन फसह का पर्व्व मनाते हैं, तब परमेश्वर का क्रोध उन्हें छुए बिना, निकल जाता है। यीशु मसीह इस फसह और हमारे उद्धार के बीच का संबंध दिखाता है; वह अपने शिष्यों से कहता है कि क्रूस पर उस की मृत्यु फसह की सब बातों की पूर्ति है (लूका २२:१६)।

मूसा और फिरौन के बीच जो संवाद होता है, उस से आप समझते हैं कि फिरौन इस्राएलियों को जाने नहीं देगा। वह अपना मन बदलता रहता है। जब विपत्ति होती है, तब वह कहता है, "तुम जाओ", परन्तु विपत्ति दूर होती है तो कहता है, "तुम नहीं जा सकते।" उन्हें अन्त में छुड़ाने के बाद भी और एक बार फिरौन अपना मन बदलता है। जब इस्राएली लाल समुद्र को पार करने वाले थे, फिरौन अपनी सेना भेजता है और ऐसा लगता है कि फिरौन उन्हें मार डालेगा। तब उन इस्राएलियों को एक और आश्चर्यकर्म की ज़रूरत थी।

मूसा वही करता है, जो करने की आज्ञा परमेश्वर उसे देता है और शेष कथा आप को मालूम है। समुद्र का जल दो भागों में बंट जाता है और दोनों ओर दीवारों के समान खड़ा होता है। इस्राएली उस के बीच से, सूखी भूमि पर कूच करते हैं। जब मिश्रियों ने उन का पीछा करने की कोशिश की, तब दोनों ओर की पानी की दीवारें नीचे आयीं और मिश्री सेना उस में डूब गयी। (१४:२१-२८)।

जब आप पुराने नियम के आश्चर्यकर्मों के विषय में पढ़ते हैं, तब आप को इस का निर्णय करना है कि आप इन अलौकिक कार्यों पर विश्वास रखते हैं या नहीं रखते। मैं विश्वास करता हूँ कि जैसे उस आश्चर्यकर्म का वर्णन किया गया है, वैसे ही वह घटित हुआ। मैं विश्वास करता हूँ कि वह कथा हमारे उद्धार का चित्र है। परमेश्वर के द्वारा आप का उद्धार भी एक आश्चर्यकर्म है। मेरा उद्धार करने में भी परमेश्वर ने एक आश्चर्यकर्म किया है। फसह और लाल समुद्र के आश्चर्यकर्म हमारे उद्धार के चित्र हैं।

इस्राएली लाल समुद्र में से होकर निकले और जंगल में आए, तब उन को और एक नयी और गंभीर समस्या हुई : उस वीरान जंगल में वे क्या खाएँगे और पिएँगे? दो-तीन करोड़ की संख्या के लोगों के भोजन और पानी का प्रबन्ध होना है। मूसा को उस के बारे में कुछ नहीं सूझता था। परन्तु परमेश्वर उस का हल जानता था।

परमेश्वर यहाँ उन की ज़रूरतों को पूरा करने को एक दूसरा आश्चर्यकर्म करता है। एक दिन भोर को जब लोग उठे तब ज़मीन पर सफ़ेद कुछ चीज़ें देखीं। वे आपस में पूछने लगे, "वह क्या है?" इन शब्दों के लिए प्रयुक्त इब्रानी शब्द का अनुवाद है "मन्ना"। उन्हों ने उसे वही नाम दिया। उस दिन से वह रोज़ ज़मीन पर दिखाई पड़ा।

परमेश्वर ने इस्राएलियों को जो खाना दिया, उस में अवश्य सब पौष्टिक साधन भरे होंगे, क्योंकि वे चालीस सालों तक उस के सहारे ही जीते रहे। यह अलौकिक घटना हमारे जीवन के और एक अद्‌भुत विषय की ओर इशारा करती है - हमारा संरक्षण। हमारे संरक्षण का स्रोत कौन या क्या है? क्या आप देश की आर्थिक व्यवस्था पर या अपनी योग्यता पर निर्भर करते हैं? वास्तव में हमारी सब आवश्यकताओं की पूर्ति का मूल स्रोत है परमेश्वर। जब हम उस की ओर देखते हैं, तब वह हमें जिस की जब ज़रूरत होती है, उसे तब देता है। उन्हें यह मन्ना हर रोज़ इकट्‌ठा करना था, जो यीशु के इस निर्देश का प्रतीकात्मक चित्रण है कि जब हम प्रार्थना करते हैं, तब हमें परमेश्वर से माँगना है कि "हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे।" हम भोजन करने के पहले परमेश्वर को धन्यवाद करते हैं, जिस का यह संकेत है कि हम इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि परमेश्वर ही उस भोजन और हमारी अन्य ज़रूरी वस्तुओं का दाता है। इस्राएलियों को चालीस सालों तक उस जंगली भूमि में परमेश्वर

ने जो भोजन और पानी देकर उन का पालन पोषण किया, वह हमारे जीवन में परमेश्वर के संरक्षण की याद दिलाता है।

हमारा उद्धार

निर्गमन पुस्तक में हम अपने उद्धार के और हमारी प्रधान आराधना - पद्धति के आधार का पता लगाएँगे। इस्राएलियों के उद्धार का केन्द्रबिन्दु जो फसह था, वही हमारे उद्धार का केन्द्रबिन्दु - पवित्र भोजन - बना। इस्राएलियों से कहा गया कि वे एक मेम्ने की बलि करें और उस का लोहू लेकर द्वार के चौखट के सिरे और दोनों अलंगों पर लगावें। यह यीशु मसीह के क्रूस का चित्र है; उस के क्रूस पर का बलिदान परमेश्वर के क्रोध को हमारी ओर से हटाता है। यीशु जो परमेश्वर का मेम्ना था उस की बलि हमारे लिए की गई और उस का लोहू हमारा उद्धार करता है। फसह के मेम्ने में हमें परमेश्वर के मेम्ने यीशु मसीह का चित्रण मिलता है।

मेरी यह प्रार्थना है कि आप निर्गमन की पुस्तक पढ़ें। तब आप देखेंगे कि इस्राएलियों की रक्षा जिन आश्चर्यकर्मों से हुई, वे आज के हमारे उद्धार के आश्चर्यकर्मों के चित्र हैं।

पाठ १६

दस आज्ञाओं का अर्थ या सार

निर्गमन २०:१-१७ में जिन दस आज्ञाओं की सूची मिलती है, मैं अब उन का अध्ययन प्रस्तुत करूँगा। ये दस आज्ञाएँ सैकड़ों ख़ास आज्ञाओं के सार हैं।

दस आज्ञाएँ दो तख्तियों पर लिखी गयी थीं। एक पर चार आज्ञाएँ थीं, जो सब परमेश्वर के साथ हमारे संबंधों के विषय पर थीं:

१. तू मुझे छोड़कर दूसरों को ईश्वर करके न मानना।

२. तू मूर्तियों की उपासना न करना।

३. तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना।

४. तू विश्रामदिन को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना। ये चारों आज्ञाएँ परमेश्वर के साथ हमारे संबंध के विषय की हैं।

दूसरी तख्ती पर छः आज्ञाएँ थीं। और ये छः आज्ञाएँ लोगों के साथ हमारे संबंध के विषय की हैं।

५. तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना।

६. तू खून न करना।

७. तू व्यभिचार न करना।

८. तू चोरी न करना।

९. तू किसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना।

१०. तू लालच न करना।

अब हम इन दस आज्ञाओं का अर्थ समझने को उन का सूक्ष्म निरीक्षण करेंगे।

पहली आज्ञा है, "तू मुझे छोड़कर दूसरों को ईश्वर करके न मानना।" पहले मैं ने कहा है कि बाइबल का सार "परमेश्वर को प्रथम स्थान" शब्दों में है। पहली आज्ञा का अर्थ या सार यही है।

दूसरी आज्ञा कोई मूर्ति खोदकर न बनाना या आकाश में और पृथ्वी पर होने वाली किसी चीज़ की प्रतिमा न बनाना और उसे परमेश्वर नहीं मानना। यह आज्ञा मूर्तिपूजा का विरोध करती है। इस आज्ञा का सार यह है कि परमेश्वर आत्मा है, हमारे विश्वास का यह आधार हमेशा अदृश्य है। परमेश्वर अपने साथ हमारे संबंध की और उपासना की यही पद्धति बनाई है। वह चाहता है कि हम विश्वास के साथ उस के पास जाएँ। अगर हम कुछ दृश्य वस्तुएँ बनाकर उसे परमेश्वर के प्रतिनिधि मानें तो हम विश्वास की आवश्यकता को नकारते हैं।

तीसरी आज्ञा है कि हमें परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना है। अनेक लोग सोचते हैं कि यह अपवित्रता के विषय पर है, परन्तु इस आज्ञा का सार इस से भी विशाल है। उस का सार यह है कि जब कभी आप परमेश्वर का नाम लेते हैं, चाहे वह उपासना में ही हो, आप को स्मरण करना है कि परमेश्वर कौन है, उस के नाम को उस नाम के महत्त्व से अलग करके यों ही उच्चरित नहीं करना चाहिए। हमें उस के नाम को लापरवाही से, बिना सोचे-समझे या निरादरपूर्वक कभी, उस की उपासना करते समय भी, नहीं लेना चाहिए।

चौथी आज्ञा विश्रामदिन को पवित्र मानने के बारे में है। व्यवस्था की पुस्तकों में होनेवाले सैकड़ों आज्ञाओं में इस के कई प्रयोग मिलते हैं। कई यहूदी नियम इस आज्ञा से निकले हैं, परन्तु इस में निहित सिद्धांत प्रथम आज्ञा के समान है, याने, अपने जीवन में परमेश्वर को प्रथम स्थान देना। उस के लिए समय अलग रखना। सब्त के सिद्धांत का एक प्रयोग विश्राम लेना है। इस चौथी आज्ञा के सार की अवगणना करने से लोगों को बड़ी मनोवैज्ञानिक और भावात्मक समस्याएँ होती हैं।

दूसरी तख्ती पर लिखी हुई आज्ञाएँ हमारे जीवन में दूसरे लोगों के साथ संबंध के विषय पर हैं। पाँचवी आज्ञा माँ-बाप के साथ संबंध की है। साधारण तौर पर सब से पहले आप का संबंध उन के साथ होता है। इस आज्ञा में माँ-बाप का आदर करने का निर्देश है। यही एकमात्र आज्ञा है, जिस के साथ वादा भी लगा हुआ है : तू अपने

पिता और अपनी माता का आदर करना, जिस से जो देश तेरा परमेश्वर तुझे देता है उस में तू बहुत दिन तक रहने पाए (१२)। आज्ञा माता-पिता का आदर करने की है, उन का कहना मानने की नहीं है। बाइबल की शिक्षा है कि बच्चों को माँ-बाप का कहना मानना चाहिए। बच्चों को अवश्य ऐसा करना है। परन्तु यह पाँचवी आज्ञा बड़ों के लिए है। वह माता-पिता का आदर करने, उन का सम्मान करने की आज्ञा है।

अगली आज्ञा हैः खून न करना। इस का भी शाब्दिक अर्थ नहीं लिया जा सकता। इस आज्ञा का सार यह है जीवन परमेश्वर के हाथों में है; परमेश्वर जीवन देता है और जीवन लेना भी परमेश्वर के अधिकार के अन्दर की बात है।

सातवीं आज्ञा व्यभिचार न करने की है। इस आज्ञा के अर्थ के व्यापक रूप को हम "बच्चों के अधिकार" भी कह सकते हैं। पुरुष और नारी को लेकर उन्हें एक दूसरे के सहभागी बनाने की परमेश्वर की याजना उत्पत्ति के दूसरे अध्याय से शुरू होती है; इस का उद्देश्य है, ये नर-नारी मिलकर माता-पिता बनें, बच्चे पैदा करें, जो बड़े होकर फिर माता-पिता बनेंगे। इस तरह बच्चों के पालन-पोषण में और उन के उत्तम रूप से बड़े होने में वैवाहिक जीवन का बहुत महत्त्व है। माता-पिता के परस्पर समर्पण और विश्वास पर ही बच्चों की सुरक्षा आश्रित है। मेरा विचार है कि इस आज्ञा के पीछे होनेवाला सत्य यह है कि "व्यभिचार न करने" की आज्ञा देने में परिवारों और बच्चों के बारे में परमेश्वर की चिंता व्यक्त होती है।

आठवीं आज्ञा है "तू चोरी न करना"। इस आज्ञा से यह अर्थ निकलता है कि परमेश्वर क्रम चाहता है। परमेश्वर की कृपा से और अपने प्रयत्न से हम कुछ संपत्ति इकट्ठा करते हैं। जब कोई चुराता है तो परमेश्वर ने जो क्रम और प्रबन्ध रखा है, उस की हानि की जाती है। इस आज्ञा का सार परमेश्वर से निश्चित की हुई व्यवस्था का है।

नवीं आज्ञा है, "तू किसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना।" लोगों ने इस आज्ञा का सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया है। हम केवल लोगों के मुँह से निकलने वाले कई तरह के झूठ के बारे में सोचने लगते हैं। झूठ बोलने का एक चालाक उपाय है, संदर्भ से अलग करके सच बोलना या सत्य का एक अंश ही कहना। लोग जब किसी के स्वभाव पर कलंक लगाना चाहते हैं, तब लोग इस तरीके को अपनाते हैं। आज्ञा में इतना ही निर्देश है कि "तू झूठी साक्षी न देना।" परन्तु इस बात में कितनी चालें चलायी जा सकती

हैं, इस का उल्लेख उस में नहीं है। आप थोड़ा थोड़ा करके गलत प्रभाव डालें, सच न बोलें, झूठ बोलें, ऐसी बहुत सी बातें करके इस नवीं आज्ञा को तोड़ सकते हैं। नवीं आज्ञा का सार है, अपने शब्दों से, हाव-भावों से, इंगितों या इशारों से या अन्य किसी प्रकार से हमेशा सच बोलना, कोई कपट न करना।

अंतिम आज्ञा है, लालच न करने की। इस का सार आठवीं आज्ञा, "चोरी न करना" से मिलता-जुलता है। हमारे पास जितना होना चाहिए, उस के संबंध में परमेश्वर की एक इच्छा है। हमारे पति या पत्नी, कुटुंब, घर, हमारी नौकरी, पद और हमारे जीवन की सारी स्थिति के विषय में परमेश्वर का एक उद्देश्य होता है। बाइबल की शिक्षा है कि हमें अपनी तुलना किसी दूसरे से नहीं करनी चाहिए। हम में प्रत्येक व्यक्ति अनुपम होता है। परमेश्वर हर एक को बनाकर फिर उस के ढांचे पर या नमूने पर दूसरे को नहीं बनाता। वह नहीं चाहता कि हम दूसरे व्यक्ति के जैसे हों या दूसरा हमारे जैसे हो। अगर यह सच है तो, हमें अपनी तुलना दूसरों से नहीं करनी है और हमें दूसरों की वस्तुओं को देखकर जलना नहीं चाहिए, लालच भी नहीं करनी चाहिए। जलन और लालच का होना इस का सूचक है कि हम अपने जीवन में परमेश्वर की इच्छा से अतृप्त हैं। मेरी राय में, यह दसवीं आज्ञा का सार है।